1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-7, अंक-6, जून-जुलाई 2024, ₹50/-

27 वर्षों की सांस्कृतिक यात्रा पूर्ण...

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

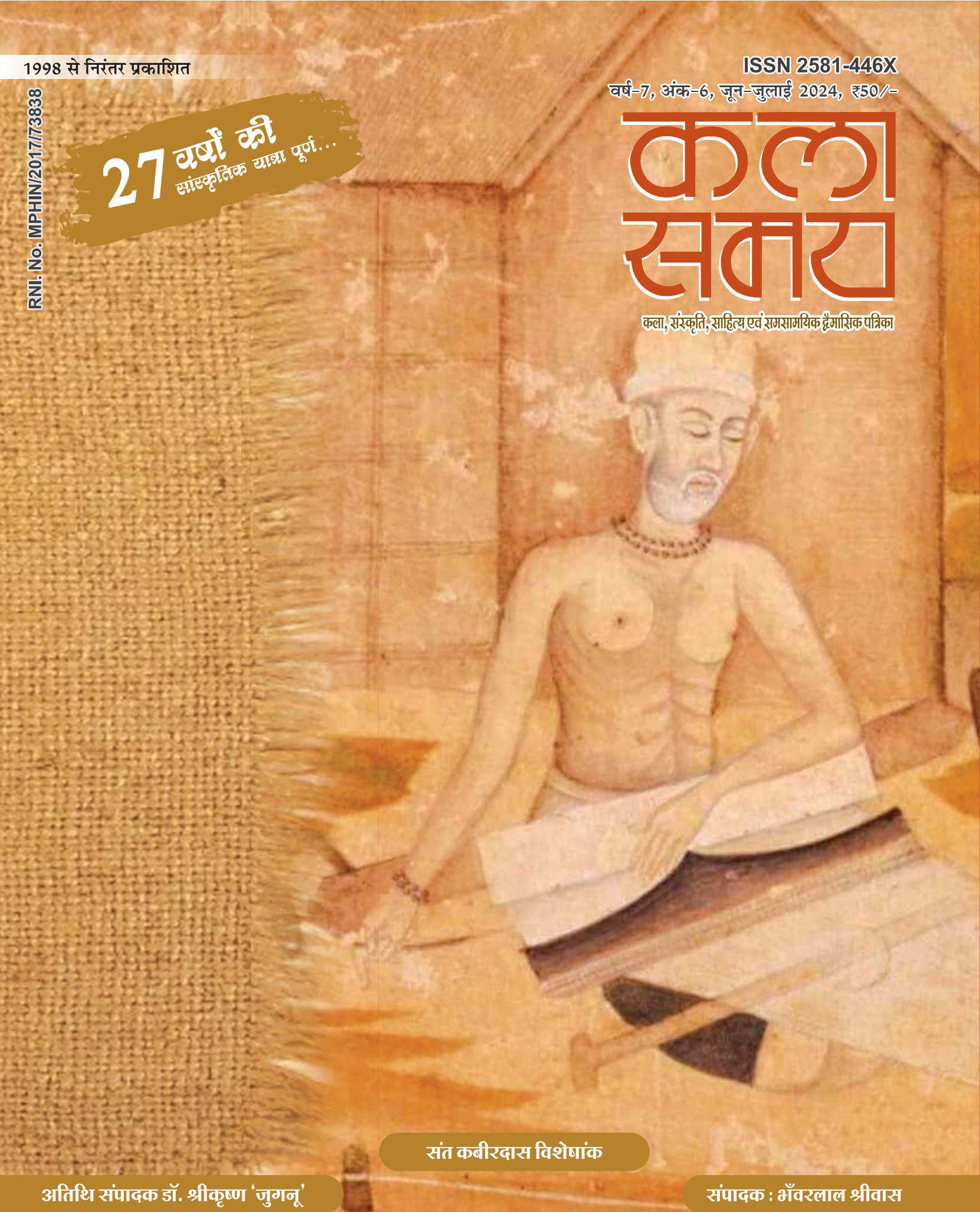

संत कबीरदास विशेषांक

अतिथि संपादक डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

कला समय के

संत कबीरदास विशेषांक

प्रकाशन पर

भारती बिल्डकॉन

ग्वालियर की ओर से

हार्दिक शुभकामनाएं

उदय प्रताप शर्मा

RNI NO. MPHIN/2017/73838

1998 से निरंतर प्रकाशित

देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध

www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X

(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)

(वर्ष : 20+07=27) पूर्णांक-129,

वर्ष-7, अंक-6, जून-जुलाई 2024, मूल्य : ₹50/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

❊ पत्रिका नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान ❊

संरक्षक

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

डॉ. महेन्द्र भानावत

श्यामसुंदर दुबे

कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

महेश श्रीवास्तव

❊

परामर्श

लक्ष्मीनारायण पयोधि

डॉ. नारायण व्यास

प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'

प्रो. सुधा अग्रवाल

❊

सांस्कृतिक प्रतिनिधि

चेतना श्रीवास

❊

वेबसाइट प्रबंधन

मयंक अग्रवाल

❊

कानूनी सलाहकार

जयंत कुमार मेढ़े (एडवोकेट)

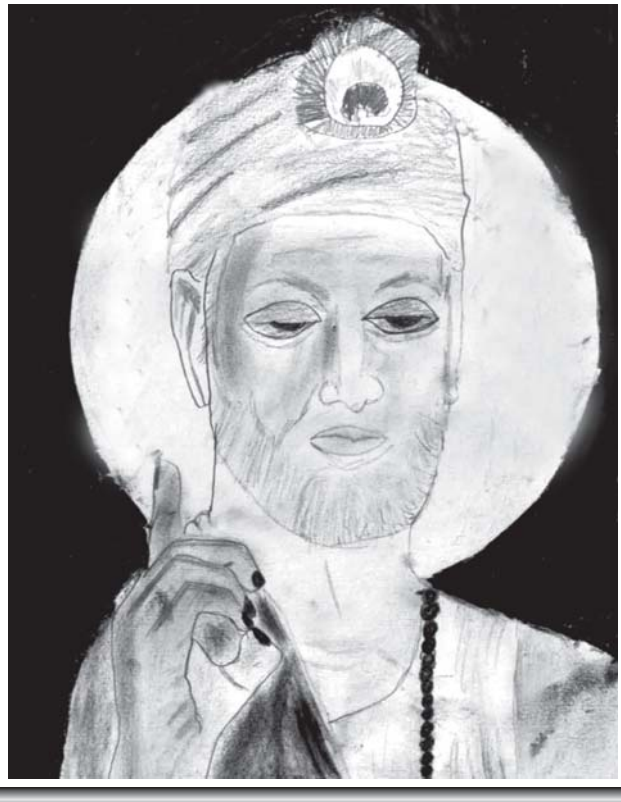

रेखाचित्रः हरिन श्रीवास (उम्र-11 वर्ष)

संपादक

भँवरलाल श्रीवास

❊

सलाहकार संपादक

डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा

❊

सह संपादक

डॉ. मधु भट्ट तैलंग

❊

उप संपादक

राहुल श्रीवास

सुन्दरलाल प्रजापति

❊

नरिन्दर कौर

प्रबंध संपादक

❊

संपादक मंडल

डॉ. बिनय षडंगी राजाराम

साहित्य

❊

अरुण तिवारी

समसामयिक

❊

हरीश श्रीवास

कला, संस्कृति

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 150/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग

जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :

'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - **भँवरलाल श्रीवास**

संत कबीरदास विशेषांक के प्रमुख विद्वान हस्ताक्षर...

डॉ.सतीश चतुर्वेदी शाकुंतल

प्रो. महेश दुबे

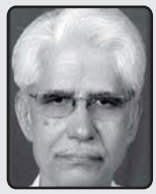
प्रभुदयाल मिश्र

डॉ. सुमन चौरे

डॉ. रमेश कनेसरिया

डॉ. शोभा सिंह

डॉ. अद्वैतवादिनी कौल

डा. रंजना जैन

डॉ. कवीन्द्र नारायण श्रीवास्तव

डॉ. प्रिया सूफी

डॉ. विभा ठाकुर

डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक'

डॉ. स्वाति मिश्रा

अनीता कोर्डे

शैरिल शर्मा

चेतन औदिच्य

यश मालवीय

लक्ष्मीनारायण पयोधि

अशोक 'अंजुम'

डॉ श्लेष गौतम

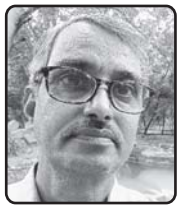

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

इस विशेषांक के अतिथि संपादक
लेखक भारतविद्याविद और
संस्कृत के वैज्ञानिक ग्रंथों के खोजकर्ता हैं।
मो. 9672872766

इस बार

- **संपादकीय**
  हम न मरिहैं मरिहै संसारा !, कलयुग के सच्चे संत कबीरदास 05
- **समय की धरोहर....**
  कबीर बीजक और त्रिजा / डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' 08
- **अद्वैत-विमर्श**
  अद्वैत दर्शन एवं संत कबीर / डॉ.सतीश चतुर्वेदी शाकुंतल 11
  शंकर ! तुम्हें प्रणाम हमारे / प्रो. महेश दुबे 14
- **संक्षिप्त जीवनी**
  सन्त कबीर 15
- **आलेख**
  सामरस्य की भक्ति के सूत्रधार कबीर/ प्रभुदयाल मिश्र 23
  संत कबीर दासजी / डॉ. दलजीत कौर 25
  सतगुरु मारया बाण कसी / डॉ. सुमन चौरे 26
  आज अधिक प्रासंगिक हैं कबीर / डा सतीश चतुर्वेदी 'शाकुन्तल' 30
  किस किस के कबीर / डॉ. प्रिया सूफी 33
  कबीर का निर्गुण प्रभाव: निर्गुण मत का जागरण / डॉ. स्वाति मिश्रा 35
- **मध्यांतर**
  लक्ष्मीनारायण पयोधि की संत कबीरदास पर कविताएँ 37
  डॉ. श्लेष गौतम की कबीर पर कविताएँ 38
  यश मालवीय के कबीरदास पर दोहे 39
  यश मालवीय के कबीर पर तीन गीत 40
  अशोक अंजुम के विविध काव्य रंग और कबीर 41
  संत कबीर दास की वाणी 42
- **आलेख**
  भारतीय ज्ञान परम्परा की अविच्छिन्न धारा के .../ डॉ. अद्वैतवादिनी कौल 45
  काशी के कबीर और कबीर की काशी / डॉ. कवीन्द्र नारायण श्रीवास्तव 47
- **संदर्भ विशेष**
  कबीर मठ मूल गादी..... कबीर चौरा / डॉ. कवीन्द्र नारायण श्रीवास्तव 49
  संत कबीरदास चित्र वीथी 50
- **आलेख**
  संत पीपाजी की दृष्टि में महात्मा कबीर / डॉ. रमेश कनेसरिया 52
  आत्मकथ्य के साक्ष्य से कबीर की आत्मकथा / डॉ विभा ठाकुर 53
  आर्थिक समता के पक्षधर संत कबीर / डॉ. शोभा सिंह 57
  निर्गुण-सगुण और कबीर / शैरिल शर्मा 60
  कबीरदास के चिंतन की वर्तमान में प्रासंगिकता/ डा. रंजना जैन 62
  गुजरात में कबीर का प्रभाव / अनीता कोर्डे 65
  गुरु ग्रंथ साहिब और कबीर / डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक' 66
- **कला अक्ष**
  चितेरा कबीर / चेतन औदिच्य 67
- **कबीर पंथ**
  मध्यप्रदेश में कबीर पंथ 69
- **पुस्तक भूमिका**
  कबीर पर उपन्यास : लोई का ताना / रांगेय राघव 71
- **पुस्तक समीक्षा**
  तोड़ने और रचने की समझ से झाँकते कबीर / विनोद नागर 73
- **समवेत**
  राजाराम रूप ध्वनि कला दीर्घा में 11 वरिष्ठ कलाकारों की ... 74
- **प्रतिक्रिया**
  कला समय का जल विशेषांक : एक सामयिक विमर्श 75

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 99819848888
मुख्य आवरण - डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' के सौजन्य से
छायाचित्र -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार
सहयोग- धन सिंह, लता श्रीवास | **रेखांकन** : अशोक अंजुम
आवरण सज्जा - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

संपादकीय

हम न मरिहैं मरिहै संसारा!
कलयुग के सच्चे संत कबीरदास

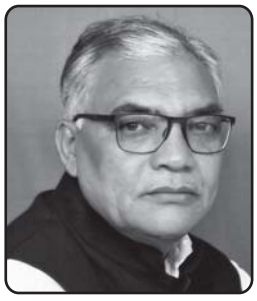

''झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहै कै ताना काहैं के भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया।।
आठ कँवल दल चरखा डोलै, पांच तत्त गुन तीनी चदरिया।
साँइ को सियत मास दस लागे, ठोक ठोक कै बीनी चदरिया।।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़ कै मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।।''

संत और भगवान में कोई अंतर नहीं है। भगवान ही अपने विविध स्वरूपों को संतों के जीवन और वाणी के रूप में प्रगट करते रहते हैं। भगवान की मंगलमय प्रेरणा और अपने सहज सुहृद भाव से ऐसी अमर वाणी छोड़ गये हैं जो अनंतकाल तक सदा-सर्वदा सबको परम कल्याण के पथ पर चढ़ाकर उन्हें सुगमता के साथ प्रभु के पावन धाम में पहुंचाती रहेगी।

'कबीरदास जी कहते हैं कि हे मनुष्य तू सबका होते हुए भी किसी का नहीं है! अन्तिम समय में कबीर साहब ने भी यही कहा - **'जो कुछ था सो कह दिया अब कछु कहिबे नांहि।'** मृत्यु भी एक उत्सव हो सकती है हम कैसे समझते अगर सद्गुरु कबीर सहाब न होते तो!!! मृत्यु प्रत्येक पहचान को समाप्त कर देती है यह कबीर के सत्य का अनुगान है जो हजारों कण्ठों से फूटता है और फैलता जाता है। **'हद-अनहद दोनों गया, कबिरा देखा नूर।'** कबीर स्वयं निराकार रह गये बिना रूप के केवल नाम! कबीर!!!'

'बंदऊँ संत समान चित, हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलिगत सुभ सुगम जिमि, सम सुगंध कर दोइ।।

कबीर ने ऐसे विश्व-धर्म की स्थापना की जो जन-जीवन की व्यावहारिकता में उतर सके और अन्य धर्मों के प्रसार में समानान्तर बहते हुए अपना रूप सुरक्षित रख सके। वह रूप सहज और स्वाभाविक हो तथा अपनी विचारधारा में सत्य से इतना प्रखर हो कि विविध वर्ग विचार वाले व्यक्ति अधिक से अधिक संख्या में उसे स्वीकार कर सकें और अपने जीवन का अंग बना लें। कबीर शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा अनुभव ज्ञान को अधिक महत्व देते थे। उनका विश्वास सत्संग में था। उन्होंने अद्वैत से तो इतना ग्रहण किया कि ब्रह्म एक है, द्वितीय नहीं। जो कुछ भी दृश्यमान है, वह माया है मिथ्या है और उन्होंने माया का मानवीकरण कर उसे कंचन और कामनी का पर्याय माना और सुफी मत के शैतान की भांति पथभ्रष्ट करने वाली समझा। उनका ईश्वर एक है जो निर्गुण और सगुण से भी परे है वह निर्विकार है, अरूप है उसे मूर्ति और अवतार में सीमित करना ब्रह्म की सर्वव्यापकता का निषध करना है इस निराकार ब्रह्म की उपासना योग और भक्ति से की जा सकती है। इसमें भी भक्ति महत्तर है। भक्ति के लिए किसी व्यक्तित्व की अपेक्षा है। इस व्यक्तित्व को अवतार में प्रतिष्ठित न कर कबीर ने प्रतीकों में स्थापित किया उन्होंने ब्रह्म से अपना मानसिक संबंध जोड़ा। ब्रह्म गुरु, राजा,पिता, माता, स्वामी, मित्र और पति के रूप में है पति का रूप मानने पर आत्मा उसकी प्रियसी बन जाती है। इसी प्रियतम और प्रेयसी के संबंध में जो दाम्तत्य प्रेम लक्षित हुआ हैं, उसी में कबीर रहस्यवाद की सृष्टि हुई। उनकी मानसिक भक्ति में न तो किसी कर्मकाण्ड की आवश्यकता है न कि मूर्ति और अवतार की। यह बात दूसरी है कि कबीर में अपने ब्रह्म के लिए अवतारवादी नाम भी स्वीकार किये हैं। क्योंकि ब्रह्म के नाम अनंत है-

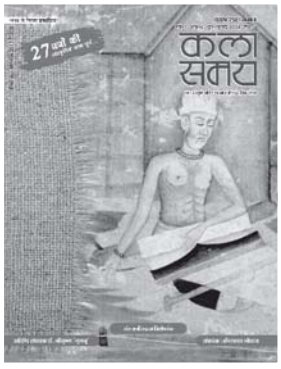

हरि मोरा पीव भाई हरि मोरा पीव।
हरि बिन रहि न सके मोरा जीव।।

कबीर का व्यक्तित्व और निर्द्वन्द दृष्टिकोण इतना प्रभावशाली था कि उनके विचारों के आधार पर एक सम्प्रदाय चल पड़ा जिसे संत सम्प्रदाय की संज्ञा मिली इस सम्प्रदाय में अनेक कवि हुए हैं दादू, सुंदरदास, गरीबदास, चरणदास आदि। कबीर की भाषा पुरबी जनपद की भाषा थी यह भाषा यद्यपि अत्यंत साधारण थी तथापि इससे भावो की अभिव्यंजना की बड़ी शक्ति है इसे सधुक्कड़ी भाषा का नाम भी दिया गया किन्तु इनमें जो रूपक और प्रतीक प्रयुक्त हुए उनसे भाषा का साहित्यिक महत्व भी है। इसमें सामान्य रूप से उपमा, रूपक, उत्प्रेरक्षा, दृष्टांत, यमक आदि अलंकार सरलता से आ गये हैं कबीर का प्रमुख दृष्टिकोण भावना और अनुभूति को व्यक्त करना था। उन्होंने भाषा के

सौष्ठव की और अधिक ध्यान नहीं दिया तथापि उनकी भाषा सरस और सुबोध है रूपक और प्रतीकों के साथ उन्होंने उलटवासी का प्रयोग किया जिससे कार्य व्यापार की स्थिति में विपर्यय ज्ञात होता है या अध्यात्मवाद का मर्म समझाने का उनके पास बड़ा प्रभावशाली साधन है। '**पहले पूत पिछौरी माई**' कहकर उन्होंने जीव के उत्पन्न होने पर माया के प्रभाव को लक्षित किया है। अध्यात्मवाद का विषय इस शैली में अभिव्यक्त करने के कारण उनके काव्य में शांत और अद्‌भुत रस बिना प्रयास के ही आ गये हैं।

कबीर के काव्य का प्रभाव इतना व्यापक रहा है कि व देश-काल की सीमाओं को पार कर अनेक भाषाओं में अनुवादित हुआ उन्होंने जातिवाद वर्ग एवं सम्प्रदायों की सीमाओं का अतिक्रमण कर एक ऐसे मानव-समाज की स्थापना की जिसमें विभिन्न दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति भी नि:संकोच होकर सम्मिलित हुए। यही कारण है कि कबीर पंथ में हिन्दु और मुसलमानों का प्रवेश समान रूप से देखा जाता है कबीर वास्तव में एक ऐसे महाकवि थे जिन्होंने जीवनगत सत्य का संदेश सौन्दर्य के दृष्टिकोण से रखा है जीवन की स्वाभाविक और सात्विक क्रियाशीलता में ही उनके धर्म की व्यवस्था है जिसका प्रसार उन्होंने रमैनी, साखी और शब्द (पद) में किया।

कबीर धर्मगुरु थे। भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। कबीरदास एक जबरदस्त क्रांतिकारी पुरुष थे। कबीर दास की सच्ची महिमा तो कोई गहरे में गोता लगाने वाला ही समझ सकता है। कबीर की नजर में दूसरा कोई है ही नहीं। सबकी आत्मा का रंग एक है। कबीर अपने आप में झांकने की कला सिखाते हैं। जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे पुरुषार्थों को साधने में काम आती है अपना घर जलाकर ही कबीर के साथ चला जा सकता है जो दूसरों का घर जलाते हैं वे कबीर के साथ नहीं चल सकते। कबीर जिस घर को जलाने की बात कर रहे हैं; वह मिट्टी पत्थर का घर नहीं; हमारा शरीर ही है; जिसमें हमारी आत्मा बन्दिनी है अपने शरीर से बाहर निकल कर आत्मा की एकता में शामिल हो जाओ जहां कोई दूसरा नहीं। आवाजों से भरी दुनिया में कबीर की आवाज पिछले 626 सालों से निरंतर हमारे पास आ रही है यह आवाज इतनी साफ और निस्पक्ष है कि व्यर्थ की आवाजों का शोर उसे आज तक दबा नहीं पाया कबीर की आवाज में हर बोल अनमोल है; क्योंकि उसे दिल की तराजू पर तोल कर बोला गया है। कबीर न तो कोई हद बांधते हैं और ना ही उसकी आवाज किसी हद में बांधी जा सकती है वहाँ तो अलख-इलाही के ताने-बाने पर निरंतर जीवन की चादर बुनी जा रही है; जिसका ओर-छोर ही पता नहीं। कबीर जीवन की इस चादर को बड़े जतन से ओढ़ते हैं और बिना मैली किये ज्यों की त्यों रख देते हैं। उनके अनहद की धुन में सन्नाटा नहीं है - '**चींटी के पग घुंघरू बांधे सो भी साहिब सुनता है**' वहां तो जीवन के उस सहज भाव की लय है जिसमें सांचे शब्द को हर कोई गुनगुना सकता है। कबीर का शून्य शिखर ऐसी अखण्ड भूमि है जहां सब निर्भय-निर्गुण का गान करते हैं। जहां बसेरा करते हुए सारे पाखण्ड झर जाते हैं कबीर इसी भूमि पर खड़े होकर सदियों से बोल रहे हैं। यह भूमि कहीं और नहीं हमारे ही दिलों में है। कबीर की आवाज खुद अपनी तरफ मुढ़कर देखने की आवाज है कबीर के साथ चलना खुद अपने साथ चलना है। वे हमें फटकार कर सच बोलने की कला सिखाते हैं परमात्मा की खोज में अंतत: वह सौभाग्य की कड़ी भी आ जाती है जब परमात्मा तो मिल जाता है लेकिन खोजने वाला खो जाता है अपने को मिटाने में लगना वही परमात्मा की खोज है कबीर कहते हैं - '**कस्तूरी कुण्डल बसै। तेरा सांई तुज्झ में, जागि सकै तो जाग।**' ऐसे घट-घट राम है जैसे कस्तूरी कुण्डल के भीतर छिपी है ऐसे घट-घट राम हैं दुनिया देखे नाहिं।'

मोकौ कहाँ ढूंढ़े रे बन्दें मैं तो तेरे पास में।
ना मैं मंदिर ना मैं मस्जिद ना काबे कैलाश में।।

श्री गुरुग्रंथ साहिब में कबीरदास के पाँच सौ इकतालीस दोहों को सम्मान प्राप्त हुआ है। धीरे-धीरे कबीर अंतरमुखी होते चले गये, वही आत्मज्ञानी की स्थिति है, वही पूर्ण ब्रह्म का साक्षात्कार करता है कबीरदास ने स्वाभिमान से कपड़ा बुना और उसे बेचकर अपनी गृहस्थी चलायी किन्तु साथ-साथ भजन भी किया और साधु-संगत भी चलती रही। कलयुग में कबीर सच्चा भक्त है संत कबीरदास कहते हैं कि परमात्मा के एक ही प्रकाश से सारी सृष्टि हुई है, इसलिये कौन भला कौन बुरा? सभी मानव एक ही हैं-

'अला एकै नूर उपनाया, ताकी कैसी निंदा।
ता नूर थै सब जग कीया, कौन भला कौन मंदा।।

कबीरदास की अपने निर्गुण 'राम' के प्रति अविचल भक्ति तथा उनके ''**ढ़ाई आखर प्रेम के**'' संत

कबीरदास मृत्यु के पूर्व मगहर जाकर रहने लगे और वहीं प्राण छोड़े। मृत्यु के पूर्व कबीरदास जी कहते हैं कि मेरे लिए तो जैसे काशी वैसे ही मगहर है, क्योंकि मेरे हृदय में तो मेरे स्वामी 'राम' सदैव विराजमान हैं। कबीर ने अपनी वाणी में जिस देश को बार-बार याद किया है वह तो संभवत: 'अमर लोक' ही है। यह संसार ओस का मोती है। ब्रह्म से उत्पन्न है। ब्रह्ममय है। अंत में अपना नाम रूप खो कर ब्रह्म में ही लीन हो जायेगा। तभी तो सद्गुरु कबीरदास जी कहते हैं **'हम न मरिहैं मरिहै संसारा!'** यही सच्चा सौदा संत कबीर का है। जो ब्रह्म को जान लेता है, वह स्वयं ब्रह्म हो जाता है। ब्रह्म और आत्मा अप्रत्यक्ष प्रमाण के क्षेत्र हैं। ब्रह्म एक है! एक ही दीप का सर्वस्त्र प्रकाश है जगत का व्यवहार देखकर कबीरदास जी उदास हैं। कबीर के देश में जाति-पाति, ऊंच-नीच, भेद-विभेद, रूप-कुरूप, गरीब-अमीर, राजा-रंक नहीं है वहां केवल जीव है। जीवन है। गुरु है। ज्ञान है। आत्म संतोष है। आत्मबोध है। परा और अपरा विद्या है। सहज बानी है। सहज व्यवहार है। प्रेम रस भरा हुआ है। पनहारी है पीवनहार है -

'कबीर कुआँ एक है, पणिहारी अनेक।
बर्तन न्यारा-न्यारा है, सबमें पाणी एक।।'

कबीर अपने देश में केवल मनुष्य को चाहते हैं ऐसा मनुष्य जो जाति, वर्ण, कुल, धन, धरम, पंथ, मत, मंदिर, मस्जिद, गिरिजा, गुरुद्वारे से बाहर आकर चौराहे पर ज्ञान की लुकाठी लेकर खड़ा है और सबको आह्वान कर रहा है कि जाति, पाति धन, धरम, पंथ, मत के बने घर फूंक डालो और हमारे साथ हो लो। कबीर के देश में ऐसे मनुष्य या अखिल मनुष्य की पैदाश होती है उस देश में झगड़ा, लूट-पाट, हाय-तौबा नहीं है झगड़ा-टंटा वहां माया से है। विरोध विषय वासनाओं से है। लूट-पाट वहां राम नाम की है। हाय-तौबा वहां मरण को उत्सव बनाकर परमानंद को पाने की है। 'कब मरुँ और कब ब्रह्म को देखूँ। पाऊँ।

जिस मरने थैं जग डरै, सो मेरे आनन्द।
कब मरिहूँ कब देखिहूँ, पूरन परमानन्द।।

कबीरदास जी कहते हैं कि हे मनुष्य तू सबका होते हुए भी किसी का नहीं है! अन्तिम समय में कबीर साहब ने भी यही कहा - **'जो कुछ था सो कह दिया अब कछु कहिबे नांहि।'** मृत्यु भी एक उत्सव हो सकती है हम कैसे समझते अगर सद्गुरु कबीर सहाब न होते तो!!! मृत्यु प्रत्येक पहचान को समाप्त कर देती है यह कबीर के सत्य का अनुगान है जो हजारों कण्ठों से फूटता है और फैलता जाता है। **'हद-अनहद दोनों गया, कबिरा देखा नूर।'** कबीर स्वयं निराकार रह गये बिना रूप के केवल नाम! कबीर!!!

'कला समय' का संत कबीरदास पर यह प्रतिष्ठापूर्ण विशेषांक के अतिथि संपादक वरिष्ठ साहित्यकार, इतिहासकार अध्येता ने पुन: इस विराट व्यक्तित्व 'संत कबीरदास' पर अपनी कृपा पूर्वक स्वीकृति से हमें उपकृत किया है हम उनके उदार भाव के प्रति हृदय से कृतज्ञ हैं। इस प्रतिष्ठापूर्ण अंक में जिन विद्वानों ने अपने आलेख, रचना, छायाचित्र और विशेष संदर्भ सामग्री हमने मध्यप्रदेश जनसंपर्क संचालनालय के 'सर्व धर्म समभाव' के तहत संत कबीर की वाणियों के संक्षिप्त संकलन से प्राप्त किया है हम इस अवसर पर कबीर वाणी की हस्त लिखित सामग्री बड़ौदा के पुरावस्तु संग्राहक हर्षद भाई कड़िया के सौजन्य से मिली है हम उनके प्रति ही आभार व्यक्त करते हैं कुछ महत्वपूर्ण चित्र डॉ. (स्व.) दलजीत कौर के संग्रह से और श्री ओमप्रकाश सोनी बिजौलिया के सौजन्य से हमें प्राप्त हुए हैं। कला समय के आग्रह पर इस विशेषांक हेतु प्रतिभाशाली बाल कलाकार हरिन श्रीवास द्वारा संतकबीर दास के चित्र के माध्यम से इस नन्हें कलाकार ने अपने भाव प्रगट किये हैं। हम सभी सहयोगी विद्वानों का पुन: अभिनंदन करते हैं जिनके कारण यह संग्रहणीय दस्तावेज को हम आकार दे सके। आज देश मे कबीर की वाणी को गाने वाले संत और जन-जन में निर्गण वाणी सर्व प्रथम पद्मश्री से सम्मानित प्रहलाद सिंह टीपान्या और अनेक संत है जिन्होंने लोक में कबीर को जिंदा रखा हम उन सभी संतों के श्री चरणों में नमन करते हैं। सिनेमा भी कबीर से अछुता नहीं है।

आशा है आप सभी को यह विशेषांक पसंद आयेगा। ऐसी अपेक्षा करते हैं। सभी लेखकों से निवेदन है कि वे आगे भी 'कला समय' परिवार के साथ जुड़कर अपना रचनात्मक सहयोग देते रहें। हम अपने पाठकों, शुभचिंतकों के प्रति भी आशान्वित हैं कि वे हमें अपनी प्रतिक्रियाओं से अवश्य अवगत करायेंगे।

संत कबीरदास जयंती की आपको हार्दिक शुभकामनाएं।

शुभमस्तु!

- भँवरलाल श्रीवास

कबीर बीजक और त्रिजा

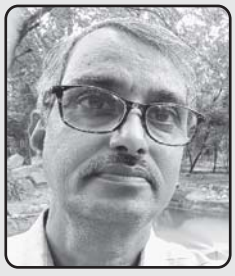

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

संत कवियों की लोकप्रियता की तुलना कबीर से की जाती है। कबीर स्वयंसिद्ध उदाहरण हैं। किसी अंगूठाटेक कहे गए जनसामान्य से लेकर परम ज्ञानियों के समूह तक वे खूब गाये जाते हैं। उदाहरण में आते हैं। उनके संदर्भ दिए जाते हैं। कबीर की भाषा भले ही कुछ कही जाती हो, लेकिन वे अपनी भाषा के प्रवर्तक हैं। उनकी अपनी संज्ञा, सर्वनाम, काल, क्रिया, विशेषण, वाक्य और छंद के लघु गुरु के प्रस्तार क्रम हैं। वे अलंकारों के आधेय हैं, रस के निधि और रूप के रूपक हैं। जन – जन में कबीर की व्याप्ति ऐसी कैसी? किसने किया ये सब? कितना बड़ा सच है कि वह लोकोक्तियों में है, प्रचलित मुहावरों और पहेलियों में है। वे लोकभाषाओं की डोर खींचते लगते हैं। भाषा शास्त्रीय विमर्शकर्ताओं के लिए परिभाषा के रूप में कबीर की ही उक्तियां हैं : भाषा बहता नीर! जबकि कबीर ने खुद तो कभी मसी कागज़ छुयो नहीं, कलम गही नहीं हाथ!

> त्रिजा नामक टीका को इस वर्ष 187 साल पूरे हो रहे हैं। यह विक्रम संवत् 1894 की कार्तिक पूर्णिमा, रविवार को पूरी हुई: संवत अठारह सै सही, साल चौरानबे जान। कार्तिक मास पूनम तिथि शुक्ल पक्ष परवान।। बार रवी ता दिन कही, समय प्रभात बखान। नग्र बुरहानपुर बैठक, नागझिरी शुभ स्थान।। दास पूरण सो अहौ, संतन दया चहंत। गुरु मापै कृपा करी, तो मैं स्तुती कहंत।।(पृष्ठ 561)

कबीर की रचनाओं के तीन रूप हैं और वे बहुश्रुत हैं : साखी, सबद तथा रमैनी। कबीर की रचनाओं का संग्रह बीजक कहा गया है लेकिन कबीर ऐसे किसी भी बीजक के बंध से परे हैं। मालवा में कबीर के जितने गेय भजनों का संग्रह किया गया, वह बताता है कबीर का कहना कहां रुका? कबीर बहते हैं और बहते रहेंगे। राजस्थान के शेखावाटी, जांगल बीकानेर, सिंध, मेवाड़, मारवाड़, हाड़ौती, मेरवाड़ा और वागड़ में कबीर के पदों के कितने रूप हैं? वे निर्गुणी कहे जाते हैं लेकिन लीलाओं तक में गाये जाते हैं। कबीर के बिना कैसी लीला? कबीर ने कानि रखी और इसीलिए कहा गया :

कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम षट दरसनी।
भक्ति विमुख जो धर्म सो अधरम कर गायौ।
जोग, जग्य, व्रत, दान, भजन, बिनु तुच्छ दिखायो।
हिन्दू – तुरक प्रमान, रमैनी, शबदी, साखी।
पक्षपात नहीं बचन, सबही के हित की भाखी।।
आरूढ़ दसा हे जगत पर, मुख देखी नाहिन भनी।
कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी।।

बीजक से हम लोकभाषा में आशय लेते हैं : अलग – अलग बहियों की उल्लेखनीय समरूप ओलियों का उतारा। एक जैसी नोंध को कहीं एक साथ लिखना। इसको बीजक बांधना भी कहा जाता। बीजक से एक आशय मुझे गुजरात के ईडर के आदिवासियों के बीच जानने को मिला : जिन फलों को उगाया जाना हो, उनके बीजों को उन फलों में ही सूखाकर रखना। ऐसे सूखे लेकिन बीजदार फल बीजक होते हैं। जिस कोथली (थैली) में तुलसी आदि की मंजरियों को बीज के लिए जमा किया जाता है, वह बीजक होती है। बीजगणित (पाटी गणित) में बीजक की अलग मान्यता है जैसा कि गणिततिलक, गणितसार में है और फिर शरीर पर जब बीज – मंत्रों का न्यास हो जाता है, वह बीजक हो जाता है।

निश्चित ही कबीर बीजक के नामकरण का वैभव इसके पास देखना होगा। इस बीजक के प्रसंग में उसकी ''त्रिजा'' उल्लेखनीय है जो वचनों को वचन ही नहीं, अर्थ को मूल रूप में रखने में बड़ी भूमिका वाली है। यह एक प्रकार से टीका है लेकिन किसी वृक्ष की सुरक्षा के लिए बनाए

जाने वाले आलवाल (थाले) की तरह महत्व की है। उसको तीन तरह से बनाया गया है, वह तीन परकोटे वाली होने से त्रिजा है।

मध्यप्रदेश के बुरहानपुर के नागझिरी में है : कबीर निर्णय स्थान। वहीं एक संत हुए महात्मा पूरण साहेब। उनको कबीर के समान ही माना गया और उन्होंने अपने अनुभव से त्रिजा को तैयार किया और इसी कारण यह आदरणीय रही। इसके लिए कहा गया है :

♦ इसको बीजक मूल तथा बीजक टीका के कवित्तों के सूचीपत्र और पंच कोशन के कोष्ठक सहित तैयार किया गया।

♦ बुरहानपुर निवासी कबीरपंथी साधु काशीदास द्वारा इसको खेमराज श्रीकृष्णदास ने प्राप्त कर प्रकाशित किया।

♦ इसके लिए बुरहानपुर गद्दी के आचार्य रामस्वरूप दास ने सत्यापित किया : त्रिजा की पुरानी प्रतियों से पुन: मिलाकर अक्षरों की त्रुटियों को शुद्ध किया और तीन जगह टिप्पणी को रखा गया।

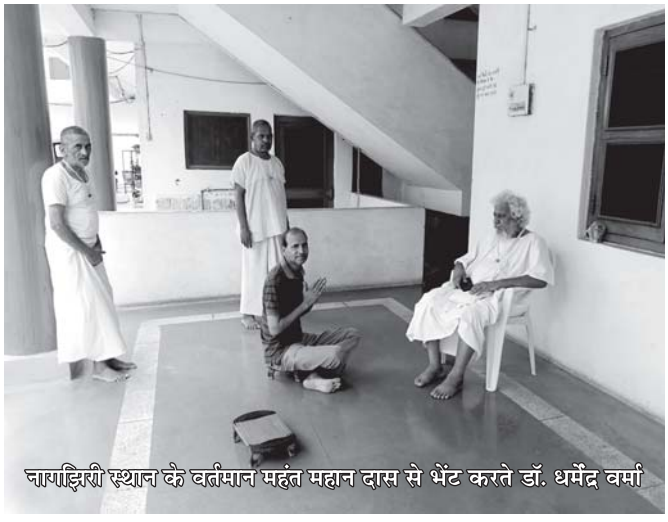
नागझिरी स्थान के वर्तमान महंत महान दास से भेंट करते डॉ. धर्मेंद्र वर्मा

आजकल बहुधा कबीर बानी, कबीर वाणी, कबीर पदावली, कबीर भजनावली आदि के नाम से उपलब्ध कृतियों पर ही विमर्श किया जाता है और बुरहानपुर के बीजक को अनदेखा कर दिया जाता है जबकि उसका बड़ा महत्व है। खेमराज श्रीकृष्णदास को सबसे अधिक कबीर के संग्रह ग्रंथों को प्रकाशित करने का श्रेय है। प्रकाशक ने कबीर वाणी में स्वयं रुचि ली। जब देखा कि बीजक सबसे पहले लखनऊ में छपा और फिर इलाहाबाद में तो बात उठी कि पाठ उचित नहीं – ''छपाने वालों ने केवल रोजगार कर नफा की ही तरफ देखके स्थान बुरहानपुर के आचार्य महंत की सम्मति के बिना और बुरहानपुर के विचारवान साधुन से अच्छे शोधे बिना छपवाये, इससे हजारों चूकें रह गईं और कहीं कहीं अर्थ का अनर्थ भी हो गया है। याही ते हमने बुरहानपुर के आचार्य महंत साहेब और काशीदास आदि साधुओं द्वारा अच्छी शुद्ध प्रति प्राप्त कर वही त्रिजा छपाई। (प्रकाशक की भूमिका)

इस त्रिजा वाले बीजक में 84 रमैनी, 115 शबद और 353 साखी है। इसके अतिरिक्त वक्तव्य के साथ ही साथ ज्ञान चौतीसा, विप्रमतीसी और फिर 12 कहरा, 12 वसन्त, 2 चांचर, 2 बेलि, 1 बिरहुली और 3 हिंडोला को मिलाकर कुल 619 रचनाएं सम्मिलित हैं।

इस बीजक का आरंभ इस प्रकार हुआ है :

सदुरवे नम:

दया गुरु की

अथ लिख्यते बीजकका त्रिजा बुझार्थ

प्रथम अनुसार

बंदौं चरण सरोज। जिन्ह यह बीजक निर्मयो॥
परख दिखायो खोज। ते गुरुसम दूजा नहीं॥1॥
निर्णय दीन्ह कृपाल। परख प्रकाशी स्थीरपद।।
परखायो सब जाल। महादुखित जिव जानिके॥2॥
दया क्षमा सन्तोष। धीरज शील विचार गुण॥
एक अनेकको धोख। परखायो निज परखते॥3॥
अशरण शरण उदार। सुख साहेब सुखरूप जो॥
कहुँ टीका विस्तार। तव पारखते कृपानिधी॥4॥
बंदों सन्त समाज। जे निर्णई गुरु परखके॥
दृढ़ मम हृदय विराज। सदा सुखी दायानिधी॥5॥

अथ रमैनी मूल

रमैनी 1.

अन्तर ज्योति शब्द एक नारी। हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी॥
ते तिरिये भग लिंग अनन्ता। तेउ न जाने आदिउ अन्ता॥
बाखरि एक विधाते कीन्हा। चौदह ठहर पाट सो लीन्हा॥
हरि हर ब्रह्मा महंतों नाऊँ। तिन्ह पुनि तीन बसावल गाऊँ।
तिन्ह पुनि रचल खंड ब्रझंडा। छौ दर्शन छानवे पाखंडा॥
पेट न काहू वेद पढ़ाया। सुन्नति कराय तुरुक नहिं आया।
नारीमों चित गर्भ प्रसूती। स्वांग धरे बहुते करतूती॥
तहिया हम तुम एकै लोहू। एकै प्राण बियापै मोहू॥
एकै जनी जना संसारा। कौन ज्ञानसे भयउ निनारा॥
भौ बालक भग द्वारे आया। भग भोगी के पुरुष कहाया॥
अविगतिकी गति काहु न जानी। एक जीव कित कहूँ बखानी॥
जो सुख होय जीभ दशलाखा। तो कोइ आय महंतों भाखा॥

साखी –

कहहिं कबीर पुकारिके। ई लेऊ व्यवहार।
राम नाम जाने बिना। भव बूड़ि मुवा संसार॥1॥

टीका बुझार्थ गुरुमुख–

दोहा– मन माया कृत भास भौ, सोई शब्द ॐकार॥
एक जीव अनुमानते, बानी रची बिचार।।1।।

यह त्रिजा क्यों, इसके लिए कहा गया है कि त्रिजा कहिए बाती, ता में तीन प्रकार करके इच्छा ने जाया, ताको नाम त्रिजा। बानी के अंग तीन – एक मायामुख करके उपदेश किया और एक जीवमुख करके स्तुति दीनता करने लगा और एक ब्रह्ममुख करके कर्ता बनाया। तीन अंग बानी का जाल गुरुमुख करके परखाया। अथवा त्रिजा कहिए खानी, तामें तीन प्रकार करके इच्छा ने जाया ता का नाम त्रिजा। खानी के अंग तीन – एक पुरुष, एक स्त्री और एक नपुंसक, ये तीन अंग इच्छा माया के, सो ता खानी का जाल गुरुमुख करके परखाया। क्योंकि जीव शुद्ध होयके खानी और बानी के जाल में आसक्त होके दुखिया हो गया। ता ते गुरु ने जीव दया स्वजाति जान के खानी और बानी दोनों जाल पराखाय के पारख भूमिका पर जीव को थिर किया। भूल दृष्टि करके खानी और बानी रूप जीव हो रहा था। सो गुरु ने खानी और बानी की आसक्ति भूल थी सो परखाय के सर्व भूलदृष्टि छुड़ाई और अपनी निज दृष्टि देके अपने स्वरूप पारख पद को प्राप्त किया। तब जीव आवागमन दु:ख से रहित भया। (बीजक टीका परिचय, पृष्ठ 561)

हरि हर ब्रह्मा तकतहीं, पुनि भग लिंग अनंत ॥
तिनहुँ न जाना अंत कछू, तब हारि कहा बेअंत।।2॥
बाखरी एक बनायके, बले उक्ती कीन्ह।।
हंता मनमें लायके, चौदह भुवन पाटसो लीन्ह॥ 3॥
बाना वचन–
कर्तारूपी तीन भये, हार हर ब्रह्मा नाँव।।
इनहिन तीनिहुँ लोक रची, खंड ब्रह्मांड सो ठाँव ॥ 4 ॥
छौ दर्शन छानबे कही, पाखंड दिये बनाय।।
इतना बानी बचन सुनी, जीव सबै बौराय॥ 5॥
गुरुमुख –
गर्भवास के बीचमें काडु न वेद पढ़ाय।।
यथा सुन्नति करवायके तुरुकहु नाहीं आय॥6॥
बानीमें चित लायके, भयो गर्भ अभिमान ।।
ताते स्वांग बहुकरनी कही, हिंदू मूसलमान ।। 7 ॥
तहिया हम तुम एक ही, लोहू एके प्रान ॥
एक मोह व्यापक सकल, कियो आपनो भान ॥ 8 ॥
एक नारि एक पुरुष जग, और कहाँ ते आय ?॥
कौन ज्ञान अनुमान करी, परेहु भर्मके माहिं॥ 9॥
बहुतक बालक रूप धरी, भगद्वारे ते आय ॥
भग भोगन इच्छा करी, तब पुनि पुरुष कहाय ॥ 10 ॥
अविगति एक अनुमान है, ताको कोइ न जान ॥
एक जीवपद स्वतः है केतो कहाँ बखान ॥ 11 ॥
जैसे मुख जीभ एक है, ऐसे होय दश लाख ।।
तो कोइ यार्मे श्रेष्ठ कही, यथा महंतो भाख ॥ 12 ॥
साखी–
कहाँ है जाहि प्रकारहू। बानी लेव व्यवहार।
अनुमित सैन जाने बिना। बहु भरमि मुवा संसार ॥1॥

इस कहना न होगा कि बीजक की इस प्रति का आज तक बुरहानपुर में इसी रूप में पठन पाठन होता है। यह स्थान महाविद्यालय कहा जाता है। गत दिनों मैंने प्रियवर डॉ. धर्मेंद्र वर्मा को नागझिरी स्थान पर जाकर चित्रादि के लिए कहा तो बड़े मन से वह वहां गए। वहां के चित्र आदि भी भेजे तो मेरे संग्रह की इस सवा सौ साल पुरानी बीजक की प्रति का परिचय और महत्व लिखने का मन हो गया।

लेखक – वरिष्ठ साहित्यकार, इस विशेषांक के अतिथि संपादक हैं।
संपर्क : विश्राधरम्, 40 राजश्री कॉलोनी, विनायक नगर, उदयपुर 313001 (राज.) मो. 9928072766

■

अद्वैत दर्शन एवं संत कबीर

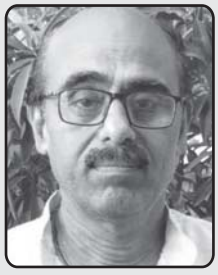

डॉ.सतीश चतुर्वेदी
शाकुंतल

भारतीय दर्शन पाश्चात्य फिलासफी शब्द का पर्यायवाची नहीं है क्योंकि पाश्चात्य फिलासफी चिंतन बुद्धि और तर्काश्रित है जबकि भारतीय दर्शन अनुभूति प्रधान है । इसलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मानना है कि चिंतन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।

अद्वैत वह सिद्धांत है जिसके अनुसार संसार मिथ्या माना गया है और ब्रह्म से ही संपूर्ण जगत की उत्पत्ति स्वीकार की गई है। ब्रह्म ही इस जगत का कारण है। अद्वैतवाद के सूत्र ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं। वृहदारण्यकोपनिषद में आत्मा और परमात्मा को अनिर्वचनीय कहा गया। आदि गुरु शंकराचार्य अद्वैतवाद के मुख्य प्रवर्तक है। उन्होंने देशाटन कर अद्वैत के विरोधियों से शास्त्रार्थ करते हुए उन्हें पराजित किया और चार मठों की स्थापना की। जगद्गुरु शंकराचार्य ने शास्त्रों का अवगाहन कर उसकी विषय वस्तु को लोकोप योगी बनाने का कार्य किया। उनका सिद्धांत अद्वैत वेदांत कहलाया जिसके चार सूत्र हैं –सोहं, तत्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, ऊँ प्रज्ञानं ब्रह्म। डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन का मानना हैकि ब्रह्म के समान अन्य कुछ नहीं है। उससे भिन्न भी कुछ नहीं है। वह ब्रह्म ही मूलभूत है और सबसे परे है। संस्कृत अद्वैतवाद को प्राय अद्वैत वेदांत कहा जाता है। हिंदी के अद्वैतवादी भक्ति मार्ग या ज्ञान भक्ति समूचे मार्ग या योग मार्ग या योग भक्ति समुच्चय मार्ग मानते हैं। हिंदी अद्वैतवाद जाती पांति की व्यवस्था का खंडन करता है और मूर्ति पूजा को साधना के लिए अनावश्यक मानता है। संस्कृत अद्वैतवाद अवतारवाद का समर्थन करता है और हिंदी अद्वैतवाद खंडन। हिंदी अद्वैतवाद बौद्ध, वैदिक यौगिक, सूफी सभी साधना और विचारधाराओं का फल है। संस्कृत अध्याय वेदांत केवल उपनिषद का अनुशीलन है, संस्कृत अद्वैतवाद में तर्क या बुद्धि का प्रमाण मान्य है। वह तार्किक है। हिंदी के अद्वैतवाद में बुद्धिवाद, स्वाध्याय आदि का खंडन है और प्रेम तथा भक्ति का अधिक महत्व है। वह तार्किक न होकर धार्मिक। (हिंदी साहित्य कोश भाग 1 डॉ धीरेंद्र वर्मा)

हिंदी के संत साहित्य में अधिकांश संत अद्वैतवादी हैं। कबीर इनमें सबसे प्राचीन तथा प्रधान है। कबीर के पास अद्वैत उनके गुरु रामानंद के कारण पहुंचा।

संत कबीर बहुश्रुत थे। कबीर ने ब्रह्म जीव जगत माया के विषय में अपनी साखियों और पदों में जो कुछ कहा है वह कोरा बौद्धिक चिंतन न होकर उनकी अपनी अनुभूति है। वह स्वयं स्वीकार करते हैं–**तू कहता कागज की लेखी, मैं कहता आंखिन की देखी।**

डॉ मक्खनलाल पाराशर मानते हैं कि यह 'आंखिन की देखी' ही सच्चा दर्शन है। ब्रह्म, जीव, जगत और माया के संबंध में उन्होंने जो अनुभूतिपरक बातें कहीं हैं वे शास्त्र के मेल में भी हैं और उनमें कबीर की अपनी मौलिक प्रतिभा का योग भी है।

ब्रह्म

शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन विश्व- ब्रह्मांड में एक ही ब्रह्म को मान्यता देता है – एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति। और क्योंकि यह जगत उस ब्रह्म की उत्पत्ति है अत: वही ब्रह्म इस संसार के कण-कण में ,प्रत्येक जीव में समाया हुआ है । तुलसी के 'सियाराम मय सब जग जानी' में भी वही भाव है। अद्वैत दर्शन भी कहता है- सर्वं खलु इदं ब्रह्म अर्थात यह सब कुछ जो दिखाई देता है, वह ब्रह्म ही है। संत कबीर के काव्य में ब्रह्म संबंधी यही मान्यता समाविष्ट है। वह अवतारवाद को नहीं मानते और इसलिए दशरथ के पुत्र राम को न मान कर राम नाम के मर्म को जानकर राम का जाप करने की बात करते हैं। वह ब्रह्म के विषय में कहते हैं –

पार ब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कों शोभा नहीं, देख्या ही परवान।।

यह उनकी स्वयं की अनुभूति है। उस ब्रह्म के अनेक नाम हैं, किन्तु वे जगदीश नाम से जगत का एक ही ईश्वर मानते हैं। कोई भी नाम ग्रहण करें वह जगदीश का पर्याय ही है। तुलसीदास जी भी 'राम सकल नामन ते अधिका' मानते हैं। संत कबीर एकेश्वर वादी हैं इसलिए उनकी इन मान्यता से उनका एक-एक शब्द सिद्ध होता है। वे कहते हैं–

हम तो एक-एक कर जाना ।
दोइ कहें तिनहीं को दो जग, जिन नाहिंन पहचाना ।।

अद्वैत दर्शन में ब्रह्म और जीव पृथक नहीं है। आत्मा- परमात्मा एक ही है। व्यावहारिक स्तर पर दो सत्ताएं प्रतीत अवश्य होती हैं, परंतु वे इस रहस्य को घट के भीतर जल और घट के बाहर जल कहकर समझाते हैं कि दोनों ही स्थान पर जल है, किंतु जब घट फूट जाता है तो वह जल

जल में मिल जाता है। इसी प्रकार जीव जब शरीर को छोड़ देता है, तो वह परमात्मा में विलीन हो जाता है। उनका कहना है–

जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी ।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत् कथहु गियानी ।।

वे दूसरा उदाहरण देकर भी इसे स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं कि जैसे पानी जम जाता है, तो बर्फ का रूप धारण कर लेता है और गल जाता है तो पुन: तरल हो जाता है जबकि उन दोनों में भेद नहीं है। इसी प्रकार आत्मा जब शरीर में आ जाती है तो ब्रह्म से अलग प्रतीत अवश्य होता है, किंतु है वह उसी का अंश–

पाणी ही थें हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कछु था सो भया, अब कछु कहा न जाइ।।

कबीर का ब्रह्म एक तो है ही, वह अद्वैत और अखंड है। वह निर्गुण है निराकार है जिसके न मुख है न माथा है, न रूप अरूप है। वह तो सुमन की गंध से भी पतला सूक्ष्म अनुपम तत्व है। वह कहते हैं –

जाके मुख माथा नहीं, ना ही रूप अ रूप।
पुहुप बास ते पातरा, ऐसा तत्त अनूप।।

इसीलिए उस ब्रह्म के मर्म को जानने में कोई समर्थ नहीं है। वह पाप– पुण्य, स्थूल –सूक्ष्म, अर्थात तीनों लोकों से परे है। वह अजर – अमर है अगोचर है, अलक्षित है, वह ज्योति स्वरूप है जिसकी ज्योति प्रत्येक शरीर धारी के भीतर विद्यमान है।

कबीर के मत में वही सिरजनहार है। त्रिगुणात्मका माया इस ब्रह्म की रचना है। सभी प्रकार के 84 लाख योनियों के जीव उसी की देन है। मनोविकार उसी की रचना है। भले –बुरे, गुणी– अगुणी, मेरा–तेरा भाव यह सब उसी का रूप है– जड़ चेतन गुण दोषमय विश्व कीन्ह करतार। संत कबीर का ब्रह्म अजन्मा है, वह जन्म नहीं लेता है। वह लौकिक देहधारी अन्य पुरुषों की भांति लौकिक देहधारी नहीं है। वह दिव्य होता है। उनका ब्रह्म निर्गुण और निराकार है, वह सर्वव्यापी भी है और सर्वातीत भी है।

आत्मा–

अद्वैत के अनुसार आत्मा और परमात्मा का भेद है। जिस प्रकार तुलसी–ईश्वर अंश जीव अविनाशी और गुरु नानक देव जोइ– जोग पिंडे, सोइ ब्रह्मंडे कहकर दोनों का एकत्व स्वीकार करते हैं। उसी प्रकार संत कबीर आत्मा –परमात्मा को एक मानते हैं। वह कहते हैं–

कहे कबीर इहु राम को अंसु।
जस कागद पर मिटै न मंसु।।

जगत–

शंकराचार्य का मत है – ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या क्योंकि ब्रह्म एकत्व में स्थित है तथा जगत अनेक तत्व में। यथार्थता की कसौटी के

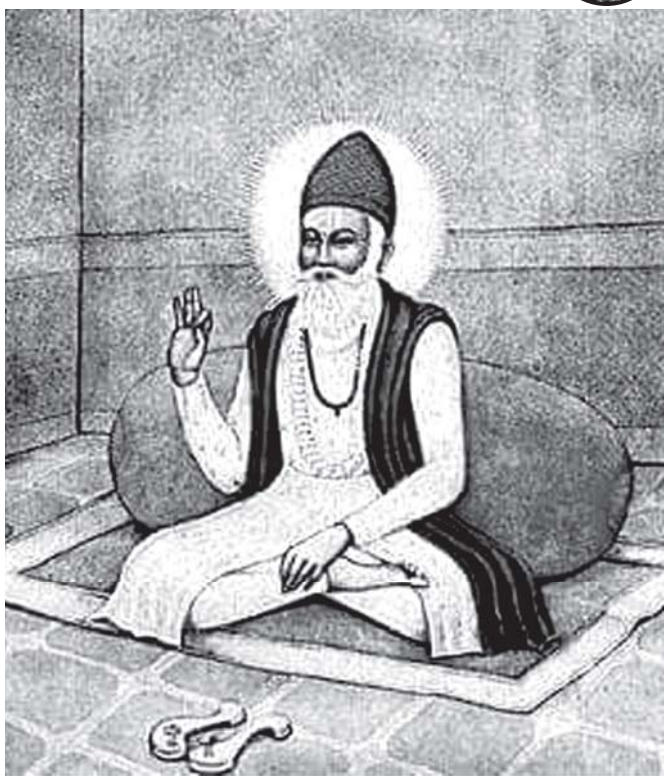

आधार पर निर्णय करने से आनुभाविक जगत का मिथ्यात्व प्रकट हो जाता है। उनका मानना है –यद्दृश्यं तन्नश्यं अर्थात् जो कुछ दृश्यवान है, ज्ञान का विषय है वह नाशवान है। यथार्थ वह है जो परस्पर विरोध से मुक्त हो जबकि यह जगत विरोधों से पूर्ण है और यह आनुभाविक जगत सब कालों में विद्यमान नहीं रहता इसलिए यथार्थ नहीं है। जैसे ही यथार्थ का ज्ञान अंतर दृष्टि के द्वारा प्राप्त हो जाता है यह आनुभाविक जगत नीचे रह जाता है, क्योंकि ब्रह्म से जो कुछ भी भिन्न है वह सब अयथार्थ है। उनका मानना है कि ब्रह्म में जगत का अध्यास होता है जैसे कि रस्सी में सांप का। अंधेरे में एक मनुष्य एक रस्सी के टुकड़े को भूल से सांप मानकर भय के मारे कांपता हुआ उससे दूर भागता है। इस पर दूसरा मनुष्य बतला सकता है डरो मत यह केवल रस्सी है सांप नहीं है और तब यह काल्पनिक सांप से उत्पन्न हुए भय को त्याग देता है और भागना बंद कर देता है, किंतु इस समय में बराबर उस मनुष्य को भ्रांति से उत्पन्न रस्सी को सांप समझ लेने के भाव से तथा फिर उस भाव के दूर हो जाने से रस्सी का अपने में कुछ बनता बिगड़ता नहीं है। तारे वस्तुत: टिमटिमाते नहीं यद्यपि हमें ऐसे प्रतीत होते हैं। जिस प्रकाश को वे तारे छोड़ते हैं वह बिल्कुल स्थिर है। यद्यपि पृथ्वी के वायुमंडल में जो विक्षोभ होते हैं और जिनके मध्य से होकर वह प्रकाश आता है वह हमारी दृष्टि को इस प्रकार से प्रभावित करते हैं जिससे तारे निरंतर टिमटिमाते हुए प्रतीत होते हैं। ठीक उसी प्रकार ब्रह्म के अंदर अस्थिरता का सादृश्य भी मन का एक भ्रम है और यह हमारी विकृत दृष्टि

के कारण होता है। (भारतीय दर्शन भाग 2, डा राधाकृष्णन)

इस जगत का आधार तो ब्रह्म ही है किंतु ब्रह्म इससे अलग है, क्योंकि मृगतृष्णा भी बिना आधार के नहीं होती। इस प्रकार का स्वप्न जिसे ईश्वर बनाता है और जिसका तत्व ईश्वर है स्वप्न हो ही नहीं सकता है। बाद के कुछ व्याख्या कारों ने अपनी नई व्याख्या इस प्रकार दी- ब्रह्म सत्यं जगत् सत्यम् मिथ्या संसार केवलम् कि ब्रह्म सत्य है और प्राकृतिक जगत भी सत्य है और जो मनुष्य कृत जितना दृश्यमान है वह असत है। संत कबीर व्यावहारिक रूप में संसार का कई रूपों में वर्णन करते हैं और उसे समझाने का प्रयास करते हैं। संत कबीर संसार को स्वप्नवत मानते हैं। वह उनका मानना है कि जिस प्रकार स्वप्न की कोई सत्ता नहीं रहती उसी प्रकार ब्रह्म ज्ञान प्राप्त होने पर मन से जगत की सत्ता लुप्त हो जाती है। स्वप्न में किसी को धन मिल जाता है तो जागने पर नहीं रहता है। गोस्वामी तुलसीदास जी एक पद में कहते हैं कि स्वप्न में कोई व्यक्ति अनेक संकटों से घिर जाता है, लेकिन बिना जागे उस दुख की निवृत्ति नहीं हो सकती। कबीर कहते हैं -

संसार ऐसा सुपिन जैसा, जीव न सुपिन समान।

इसके आगे कबीर कहते हैं कि संसार में जो कुछ है वह सारहीन है। यहां इसे सुखमय मानकर इसमें आसक्त होना ही हमारे दुखों का कारण है। इसके लिए वे एक उदाहरण देते हैं कि तोता सेमल के पेड़ पर उसके फूल में चोंच मारता है, तो उसके मुंह में रुई भर जाती है। इसी प्रकार संसार भी सारहीन है -

यहु ऐसा संसार है, जैसा सैंवल फूल।
दिन दस के व्यवहार कौं, झूठे रंग न भूल।।

वे संसार को अज्ञानजनित अंधकार से युक्त मानते हैं। संत कबीर पर नाथों और बौद्धों दोनों का प्रभाव रहा है। बौद्ध मनीषा इस संसार को दुख मय मानती है। इसी के प्रभाव में कबीर भी इस संसार को दुख मय मानते हैं। संत कबीर गीता के श्लोक -

ऊर्ध्व मूलमध:श शाखमश्वत्थं प्राहुख्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तंवेद सवेदवित्।।

के भाव अनुसार संसार रूपी वृक्ष को शब्द देते हैं --

तलि करि साखा ऊपरि करि मूल । बहुत भांति जड़ लागै फुल ।।

और इसी संसार की उत्पत्ति वह ओंकार से अर्थात ब्रह्म से मानते हैं। वे अद्वैतवाद के व्याख्याकारो कें जगत को सत्यासत्य मत के अनुसार इस जगत को अभिहित करते हैं। वह लिखते हैं -

ओंकार जग ऊपजै, विकारै जग जाइ।
अनहद बेन बजाइ करि, रह्या मगन मठ छाइ।।

मोक्ष के संबंध में अद्वैतवाद का मत है कि यदि अविद्या माया से जीव मुक्त हो जाता है तो वह जीवन्मुक्त हो जाता है। आचार्य शंकर कहते हैं यदि द्वैत परक विश्व हमें पथभ्रष्ट करना छोड़ दे तो मोक्ष की अवस्था प्राप्त हो सकती है। आत्मा परमात्मा का एकत्व ही अद्वैत है । कबीर अपनी साखियों और पदों में मुक्ति का अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं । बूंद - समुद्र की भांति आत्मा का परमात्मा में विलीन हो जाना मोक्ष है। दूसरे वे भक्ति भाव को मुक्ति के लिए अनिवार्य तत्व मानते हैं। अत:वे 52 अक्षरों में रा और म अर्थात राम का जाप करने की बात करते हैं। और कहते हैं - **कहै कबीर ते उबरे, जे रहे राम ल्यौ लाइ।** अर्थात वे लोग इस संसार से उबर जाते हैं जो राममय हो जाते हैं। वे जीवन्मुक्त और विदेह मुक्ति दोनों की बात करते हैं। इस जीवन्मुक्ति के लिए आवश्यक है-

तू तू करता तू भया मुझमें रही न हूं।
अहं भाव ही जीव को ब्रह्म से दूर रखता है।

कबीर भले ही 'मसि कागद छुऔ नहिं, कलम गही नहिं हाथ' कहते हों, किंतु उन्हें शास्त्रों का, पूर्व साहित्य का और इसके साथ-साथ सामाजिक ताने - बाने का गहन अध्ययन था और सबसे बड़ी चीज थी उनकी स्वानुभूति जिससे उन्हें आत्मविश्वास मिला था। वे तभी कह सके - जस कासी तस मगहर ऊसर और-

जौ कासी तन तजै कबीरा, तन रामहि कहा निहोरा रे।

और वे ईश्वर से एकाकारिता की यह घोषणा कर देते हैं-

हम न मरें मरिहै संसारा।
हमकूं मिल्या जियावन हारा।।
अब न मरूं मरनै मनमाना ।
तेई मूए जिन राम न जाना ।
साकत मरे संत जन जीवै।
भरि- भरि राम रसायन पीवै।
हरि मरिहैं तो हमहूं मरि हैं ।
हरि न मरैं हम काहे कूं मरिहैं।
कहै कबीर मन मनहिं मिलावा।
अमर भए सुख सागर पावा।।

लेखक- वरिष्ठ साहित्यकार एवं पूर्व प्राध्यापक हैं।
सम्पर्क : बी- 113 सिसोदिया कॉलोनी (शहीद पार्क के पास) गुना 473301
चलभाष 9425618652

अनुरोध

सभी लेखकों एवं पुस्तक समीक्षकों से निवेदन है कि कला समय के लिए भेजे जाने वाले आलेख अधिकतम 3 पृष्ठ तथा पुस्तक समीक्षा अधिकतम 2 पृष्ठ की ही मान्य होगी।

-सम्पादक

शंकर! तुम्हें प्रणाम हमारे

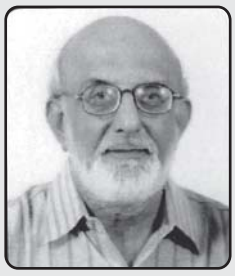

प्रो. महेश दुबे

शंकर साधक को शरीर के आकर्षण से बचने की सलाह देते हैं और इस आकर्षक शरीर की सच्चाई को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं, यह शरीर-

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थि संकुलम।
पूर्ण मूत्रपुरीषाभ्यां स्थूलं निन्द्यमिदं वपुः ।।

- विवेक चूड़ामणि (87)

इस प्रकार शंकर भज गोविन्दम् के इन प्रारंभिक श्लोकों में साधकों के प्रबल मोह विद्या, धन और कामिनी की औषधि कर देते हैं। इन मोहों के हटने के उपरान्त साधक की तृष्णा समाप्त हो जाती है।

नलिनीदलगतजलमतितरलं
तद्वज्जीवितमतिशय चपलम।
विद्धि व्याध्यभिमान ग्रस्तं
लोकं शोकहतं च समस्तम् ।।
भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्।

मनुष्य का जीवन उसी प्रकार से चपल और अस्थिर होता है जिस प्रकार सरोवर में कमल के पत्तों के ऊपर पानी की बूँदें। इन्हीं बूँदों की तरह मनुष्य का जीवन भी क्षणभंगुर और अस्थिर होता है। इसे भलीभाँति समझ लो यह सम्पूर्ण विश्व ही रोग और अभिमान से ग्रस्त और दुखों-कष्टों से आक्रान्त है।

जीवन की क्षणभंगुरता पर संत दादू दयाल लिखते हैं-

दादू यह घट काचा जल भरया बिनसत नाहीं बार।
यहु घट फूटा जल गया, समझत नहीं गंवार।।

यह सारी सृष्टि ही एक तमाशा है। ग़ालिब ने लिखा है-

बाज़ीचए अतफ़ाल है दुनिया मेरे आगे
होता है शबोरोज़ तमाशा मेरे आगे
जुज़ नाम नहीं सूरते आलम मुझे मंजूर
जुज़ वहम नहीं हस्तिए अशिया मेरे आगे।

संसार का यह बाह्य स्वरूप नाम भर को है। जीवन क्षणभंगुर है, उसके भ्रम में मत पड़ो-

हस्ती के मत फरेब में आजाइयो 'असद'
आलम तमाम हल्क़ए-दामे-ख़याल है।

हे असद! जिन्दगी के फरेब में न आ जाना, यह सरासर धोखा है। सारा विश्व विचारों के जाल का फन्दा है, फन्दे से बचो। क्षणिक अस्तित्व को जीवन मत समझो। एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं-

हाँ खाइयो मत फरेबे-हस्ती
हरचन्द कहें कि है, नहीं है।

संत चरनदास हमें बताते हैं कि विषय वासना और तृष्णा से भरे इस संसार में हमें कैसे रहना चाहिए - **जग माही ऐसे रहो, ज्यों अंबुज सर माहि।**
रहे नीर के आसरे, पै जल छूवत नाहि।।

यावद्वितोपार्जन सक्तः
तावन्निज परिवारो रक्तः।
पश्चाज्जीवति जर्जर देहे
वार्ता कोऽपि न पृच्छति गेहे।।
भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्।

जब तक तुम्हारे अन्दर धनोपार्जन की शक्ति है, तब तक ही परिवार वाले आश्रित तुम्हें घेरे रहेंगे। जब तुम निर्बल हो जाओगे, वृद्ध हो जाओगे, तब कोई तुमसे बात भी नहीं करेगा।

भर्तृहरि ने वृद्धावस्था की इस स्थिति का यथार्थ चित्रण वैराग्य शतक में किया है। वे लिखते हैं-

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि-
र्दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते।
वाक्यं नाद्रियते च बान्धव जनो भार्या न शुश्रुषते
हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते ।।

सिकुड़ गई काठी
चलना हुआ कठिन
टूटे दाँत एक-एक कर
गई रोशनी आँखों की
पड़ता कम सुनाई भी अब
बहती रहती मुँह से लार
कोई न घर में सुनने वाला
पत्नी तक का हाल यही
बेटा तो बस शत्रु जैसा
दुःखी बुढ़ापा आह!

स्वामी सुन्दरदास (ये दादू के शिष्य थे) लिखते हैं-

निपट बृद्ध जब भयो शरीरा। नैंननि आवन लाग्यौ नीरा।।
बेटा बहू नजीक न आवैं। तूँ तो मति चल कहि समुझावै।।

टूक देहि ज्यौं स्वान बिलारी। अइया मनुषहि बूझ तुम्हारी।।

सहजोबाई (ये चरनदास की शिष्या थीं) वृद्धावस्था का वर्णन करती हुई कहती हैं–

सेत रोम सब हो गये सूख गई सब देह।
सहजो वो मुख ना रहा उड़ने लागी खेह।।
सहजो इन्द्रीं सब थकीं, तन पौरुष भयोछीन ।

– खेह=धूल

आसा तृष्णा ना घटी, सहज बचन भये दीन।।
यावत्पवनो निवसति देहे
तावत्पृच्छति कुशलं गेहे।
गतवति वायो देहापायं
भार्या बिभ्यतितस्मिनकाये।।
भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम् ।

पाठान्तर– **यावज्जीवो निवसित देहे**

जब तक इस शरीर में प्राण हैं तभी तक परिचित आकर कुशल क्षेम पूछते रहते हैं। जैसे ही शरीर से प्राण निकलते हैं, यह शरीर विकृतहोने लगता है और निर्जीव शरीर को देखकर पत्नी भी डरने लगती है।

संतों ने इसी कारण से कहा है–

मूढा सयलु वि कारिमउ मं फुड्डु तुहुं तुस कंडि।
सिरपइ णिम्मलि करहि रइ घरु परियणु लहुछंडि।।

अरे मूढ़! यह सारा कर्म ही जंजाल है। मत कूट तू भूसी को। गृह और परिजनों को तुरंत त्याग और निर्मल शिव–पद में अनुरक्त हो।

– मुनि रामसिंह

स्वामी सुन्दरदास लिखते हैं–

हंस बटाऊ किया पयाना। मृतक देखिकरि सबै डराना।।
घर महि तैं ले जाहु निकारी। अड्या, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी।।

मनुष्य कितना संसार फैलाता है– कितने सम्बन्ध जोड़ता है, पर ये सब जब तक ही हैं तब तक वह जीवित है। शरीर से प्राण निकलने पर सब समाप्त हो जाता है– पर हम मृत्यु से बेखबर संसार के प्रपंच में मगन रहते हैं। इसीलिए स्वामी सुन्दरदास कहते हैं–

मेरौ देह मेरौ गेह मेरी परिवार सब
मेरौ धन माल मैं तौ बहुविधि भारौ हौं।
मेरौ सब सेवक हुकुम कोऊ मेटै नांहि
मेरी जुबती को मैं तो अधिक पियारौ ह्वौं।।
मेरो वंश ऊंचौ मेरे बाप दादा ऐसे भये
करत बड़ाई मैं तो जगत–उज्यारौ हौं।
सुन्दर कहत मेरौ मेरौ करि जानें सठ
ऐसो नहि जानै मैं तो काल ही कौ चारौं हौं।।

बालास्तावत्क्रीडासक्तः
तरुणस्तवत्तरूणीसक्तः ।
वृद्धस्तावच्चिन्तासक्तं
परमे ब्रह्माणि कोऽपि न सक्तः ।।
भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम् ।

प्रत्येक मनुष्य अपनी बाल्यावस्था में खेलों में आसक्त रहता है, युवावस्था में वासना और विकारों में लीन हो जाता है और वृद्धावस्था में चिन्ताओं में। परन्तु ब्रह्म में कोई भी आसक्त नहीं होता।

इस श्लोक में शंकर की वेदना – '**परमे ब्रह्माणि कोऽपि न सक्तः**' व्यक्त हुई है।

हमारी देहयात्रा की अवधि सीमित है। विभिन्न अवस्थाओं में हम क्रीड़ा, वासना और चिन्ता से घिरे रहते हैं। ब्रह्म चर्चा के लिये हमारे पास समय ही नहीं है। विवेक चूड़ामणि में शंकर सीख देते हैं–

लोकानुवर्तनं त्यक्त्वा त्यक्त्वा देहानुवर्तनम्।
शास्त्रानुवर्तनं त्यक्त्वा स्वाध्यासापनयं कुरु।।

संतों और कवियों ने बचपन से वृद्धावस्था तक की हमारी वासनाओं पर विस्तार से लिखा है। स्वामी सुन्दरदास ने 'तर्क चितावनी' शीर्षक से इसका चित्रोपम वर्णन प्रस्तुत किया है–

बालपन मंहि भयेअचेता। मात पिता सौ बाँध्यो हेता
प्रथमहिं चूके सुधि न सँभारी। अइया मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ।।
भयौ किशोर काम जब जाग्यौ। परदारा कौं निरखन लाग्यौ।
व्याह करन की मनमहिं धारी।
मात पिता जोरयो सनबंधा। के कुछ आपुहि कीयो धंधा
लैकरि पांस गले महि डारी।
ता पीछे जोबन मदमाता। अति गति ह्वै विषया सन राता
अपनी गनै न पर की नारी।
आठहुँ पहर विषैरस भीनां। तन मन धन जुबती को दीनां
एसी विषया लागी प्यारी।
कामिनि संग रह्यौ लपटाई। मानहुँ इहै मोक्ष हम पाई
कबहूँ नेक होइ जिनि न्यारी।
ऐसैं करत बुढ़ापा आया। तब काठी करि पकरी माया
कोडी खरचत कसकै भारी।
निपट वृद्ध जब भयौ शरीरा। नैंननि आवनि लाग्यौ नीरा
पौरी परयौ करै रखवारी।

अब तो निकट मौति चलि आई। रोक्यौ कण्ठ पित्त कफ बाई जमदूतन पासी विस्तारी। निकसित प्रान सैन समुझावै। नारायन कौ नाम न आवै देखि सबन को आँसू ढारी। अइया मनुषहुँ बूझि तुम्हारी।। सहजोबाई कहती हैं–

चार अवस्था खो दई लियो न हरि को नाम।
तन छूटे जम कूटिहैं, पापी जम के ग्राम।।

मिर्ज़ा ग़ालिब ने आत्मस्वीकृति के भाव से लिखा था– 'सारी उम्र ख़ुदा की नाफ़रमानी और बदक़ारियों में गुजरी। न कभी नमाज़ पढ़ी, न रोज़ा रखा; न कोई नेक काम किया। ज़िन्दगी की चंद साँसें बाकी रह गई हैं। अब

अगर चंद रोज बैठकर या इशारों में नमाज़ पढ़ी तो इससे सारी उम्र के गुनाहों की तलाफ़ी क्यों कर हो सकेगी?' ध्यान से विचार करें तो हम सबकी भी चिन्ता यही है।

का ते कान्ता कस्ते पुत्रः
संसारोऽय मतीव विचित्रः ।
कस्य त्वं कुत आयातः
तत्वं चिन्तह तदिह भ्रातः ।।
भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्।

कौन तुम्हारी पत्नी है, कौन तुम्हारा पुत्र है? यथार्थ में यह संसार अति विचित्र है। तुम किसके हो, कहाँ से आए हो? हे भाई! इस सत्य पर विचार करना।

प्रथम श्लोक में जिस साधक को मूढ़मते कहकर सम्बोधित करते हुए फटकार लगाई थी, शंकर इस श्लोक में उसे भ्रातः कहकर सम्बोधित करते हैं। यही नहीं, यहाँ वे उसे तात्विक चिन्तन करने को कहते हैं- '**तत्वं चिन्तह तदिह भ्रातः**' यह श्लोक एक प्रश्नावली के रूप में है और शंकर ये प्रश्न गृहस्थों से करते हैं। प्रश्नोपनिषद् और कठोपनिषद् इसी शैली में हैं जहाँ प्रश्नों का समाधान करते हुए ब्रह्म का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। प्रश्न करना शंकर कीशैली है। विवेक चूड़ामणि में भी एक शिष्य के माध्यम से जिज्ञासा के रूप में शंकर ने प्रश्न प्रस्तुत किये हैं-

को नाम बन्धः कथमेष आगतः
कथं प्रतिष्ठास्य कथं विमोक्षः।
कोऽसावनात्मा परमः क आत्मा
तयोर्विवेक कथमेत दुच्यताम्।।

What is bondage? How has it come? How does it continue to exist? How can one get out of it completely? What is the not self? Who is the supreme self? What is the process of discrimination between these two? Please explain all this to me.

कबीर के शिष्य धनी धरमदास भी प्रश्नोत्तरी की शैली में लिखते हुए कहते हैं-

कहवाँ से जीव आइल, कहवाँ समाइल हो।
कहवाँ कइल मुकाम, कहाँ लपटाइल हो।।
निरगुन से जिव आइल, सर्गुन समाइल हो।
कायागढ़ कइल मुकाम, माया लपटाइल हो।।
सत्संगत्वे निस्संगत्वं
निस्संगत्वे निर्मोहत्वम् ।
नर्मोहत्वे निश्चलतत्वं
निश्चलतत्वे जीवनमुक्तिः ।।
भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम् ।।

सत्संगति से अनासक्ति की प्राप्ति होती है। (राग-द्वेष रहित), इससे मोह छूटता है, माया छूटती है, निर्मोह आता है। और जब माया छूटती है तब आत्मज्ञान (नित्य तत्व) प्राप्त होता है, उससे मुक्ति प्राप्त होती है।

यहाँ सत्संग की महिमा बताते हुए शंकर मुक्ति तक पहुँचने के पायदानों की चर्चा करते हैं-

सत्संग - निसंगत्व - निर्मोहत्व - निश्चलत्व मुक्ति जीवन परिस्थितियों की श्रृंखला है। जो अनुभव करता है (experiencer) वह जीव है, जहाँ अनुभव होता है वह जगत है। दुःख की निवृत्ति ही मुक्ति है जब जीवन से दुःख चला जाये- समझो मुक्ति हो गई। सत्संग से विरक्ति और निर्मोह की अवस्था प्राप्त होती है जो मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

अन्यत्र (विवेक चूड़ामणि में) मोक्ष के लिए अनासक्त भाव की आवश्यकता दर्शाते हुए शंकर लिखते हैं-

मोक्षस्य हेतुः प्रथमो निगद्यते
वैराग्यमत्यन्तम नित्य वस्तुषु।
ततः शमश्चापि दमस्तितिक्षा
न्यासः प्रसक्ताखिलकर्मणां भृशम्।।

For liberation first comes extreme detachment from finite objects of sensual satisfaction. Then follows calmness self control, forbearance and complete renunciation of all selfish actions.

वयसि गते कः कामविकारः
शुष्के नीरे कः कासारः ।
क्षीणे वित्ते कः परिवारो
ज्ञाते तत्वे कः संसारः ।।
भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्।

आयु बीत जाने पर (यौवन) काम-विकार कहाँ? जल के सूख जाने पर सरोवर कहाँ? धन की कमी होने पर परिवार कहाँ और ज्ञान की प्राप्ति होने पर संसार कहाँ?

काम कहाँ जब ढले गले वय
जल सूखे तब कहाँ जलाशय।
कहाँ कुटम्ब वित्त जब छीजे
भव कैसा जब हो बोधोदय ।।

पद्यानुवाद चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

मा कुरु धनजनयौवन गर्वः
हरति निमेषात्कालः सर्वम्।
मायामय मिदमखिलं बुद्धवा
ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा ।।
भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम् ।

मा- मत (करो), कुरु- करो, बुद्धवा जानो, निमेष- पलक का झपकना।

अपने धन, परिवार और यौवन पर गर्व मत करो। काल एक पल में इन सबको नष्ट कर देगा। ये सब माया है ऐसा समझकर इनका त्याग करो और ब्रह्मपद (अपने स्वयं) को जानो।

लक्ष्मी क्षणभंगुरा है। रहीम ने हमें सावधान करते हुए लिखा है-

लक्ष्मी थिर न रहीम कवि मद जानत सब कोय।

पुरुष पुरातन की वधू क्यों न चंचला होय।।
लक्ष्मी थिर न रहीम कवि मद जानत सब कोय।
प्रभु की है अपनी कहै, क्यों न फजीतौ होय ।।

धन, संपत्ति, ऐश्वर्य सब नाशवान हैं। शेख फरीद लिखते हैं-

पासि दमामे छतु सिरि भेरी सडो रड।
जाइ सुते जीराण महि थीए अतीमा गड।।

जिनके साथ नगाड़े और तुरही बजते थे, जिनके सिर पर राज-छत्र रहते थे और जिनकी विरुदावली चारण गाते थे, वे कब्रिस्तान में सोने के लिए चले गए और वहाँ यतीमों की तरह दफना दिए गए।

फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ उसारेदे भी गए।
कूड़ा सउदा करि गए गोरी आई पए।।

फरीद, जिन्होंने मकान, हवेलियाँ और ऊँचे-ऊँचे महल बनाए थे वे भी चले गए; वे झूठा सौदा करके गए और कब्र में डाल दिए गए।

फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ एतु न लाए चित्तु।
मिटी गई अतोलवी कोई न होसी मित्तु।।

फरीद इन मकानों, हवेलियों और ऊँचे महलों में मत लगा अपने मन को। जब तेरे ऊपर बिन तोल मिट्टी पड़ेगी वहाँ तेरा कोई भी मीत नहीं होगा।

कबीर के शिष्य धनी धरमदास, संसार में धन, ऐश्वर्य के नश्वरता और निस्सारता दर्शाने के लिए कहते हैं-

छत्रपती भूपाल रहत, देखा नहिं कोई
दिन दस गये बजाइ, गर्द मां मिलिगे सोई
परिहौ नरक अघोर में, अब किन चेतो अंध
सत्त नाम जाने बिना, परौ काल को फंद

भर्तृहरि ने वैराग्य शतक में काल को नमस्कार करते हुए कहा है-

सा रम्या नगरी महान्स नृपतिः सामान्तचक्रं च त-
त्पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बानना:।
उद्धतः स च राजपुत्रनिवहस्ते बन्दिनस्ताः कथाः
सर्वयस्य वशादगात्स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः ।।

देखा हमने, आए थे जो
सब चले गए
थे जितने राजा-महाराजा
चतुर निपुण दरबारी उनके
थीं चन्द्रमुखी मनभावन
सुन्दरियाँ जितनी
और घमण्डी उजड्ड
होंगे जो राजकुमार
कि रंग जमाने वाले
गायक-वायक
उनकी रोचक बातें सब
यादों की बराती अब
देखा हमने, आए थे जो
सब चले गए
तुम्हें नमन
हे काल महान !

भज गोविन्दम् की टेक से मिलती जुलती टेक 'हरि बोलौ हरि बोल' लेकर दादू के शिष्य स्वामी सुन्दरदास ने 'हरिबोल चितावनी' लिखा, जो सधुकड़ी भाषा में भज गोविन्दम् का अनुवाद जैसा प्रतीत होता है-

मेरी मेरी करत है, देखहु नर की भोल।

भोल- भोलापन, भूल

फिरि पीछे पछिताहुगे (सु) हरि बोलौ हरि बोल।।
किये रुपइया एकठे, चौकुंटे अरु गोल।
रीते हाथन वै गये (सु) हरि बोलौ हरि बोल।।
चहल पहल सी देखिकै, मान्यौ बहुत अंदोल।

अंदोल- आनन्द

काल अचानक लै गयौ (सु) हरि बोलौ हरि बोल।।
माल मुलक हय गय घने कामिनि करत कलोल।
कतहूँ गये बिलाइकैं (सु) हरि बोलौ हरि बोल।।
मोटे मीर कहावते, करते बहुत डफोल।

डफोल- डींग

मरद गरद में मिलि गये (सु) हरि बोलौ हरि बोल।।
ऐसी गति संसार की अजहूँ राखत जोल।
आप मुये ही जानिहै (सु) हरि बोलौ हरि बोल ।।

जोल- घमंड

तेरौ तेरे पास है, अपने माँहि टटोल।
राई घटे न तिल बढ़े (सु) हरि बोलौ हरि बोल ।।
सुन्दरदास पुकारिकै कहत बजायें ढोल।
चेति सकै तो चेतिले (सु) हरि बोलौ हरि बोल।।

शंकर कहते हैं परिवार का घमंड भी मत करो कोई मदद करने वाला नहीं है। कमल को देखिये कितना समृद्ध परिवार है। विष्णु और ब्रह्मा से उसकी रिश्तेदारी है, पर-

तुच्छ तुषार इतौ परिवार भयो न सहाय दयानिधि कोई।
सूख सरोज गयो छिन में, सुख सम्पत्ति में सबको सब कोई।।

शंकर कहते है यौवन का गर्व मत करना। कबीर के शब्दों में-

कबिरा कहा गरबियो इस जोवन की आस।
केसू फूले दिवस चारि खंखर भये पलास।।

क्योंकि

कबीर पाल की सुधि नहीं, करै काल्हि का साज।
काल अच्यंता झड़पसी, त्यों तीतर को बाज

अच्यंता-अचानक

शंकर कहते हैं- धन, जन, यौवन यह सब माया है, इसलिए हे साधक तुम अपने आप को जानो। जिस दिन हम अपने आप को जान लेते हैं, उस दिन

सारे दु:खों का अंत हो जाता है। इसलिए शंकर कहते हैं कि अपने को जानने का यत्न करो।

कबीर शंकर से ज्यादा मुखर हैं-

संसकिरत भाषा पडि लीन्हा, ज्ञानी लोक कहो री।
आसा तृस्ना में बहि गयो सजनी, काम के ताप सहो री।।
मान-मनीकी मटुकी सिर पर, नाहक बोझ मरो री।
मटुकी पटक मिलो पीतम से, साहेब कबीर कहो री।।

मैंने संस्कृत भाषा पढ़ ली, लोगों अब मुझे ज्ञानी कहो। लेकिन इससे क्या लाभ। आशा की तृष्णा बहाए लिए जा रही है और कामनाओं की अग्नि जलाए डाल रही है। मान और अहंकार का बोझ सर पर उठाए फिरना और उसके नीचे दबकर मरना बेकार है। कबीर कहते हैं इस बोझ को फेंक दो और प्रीतम से जा मिलो।

हमारे आध्यात्मिक वाङ्मय में माया का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थो और आशयों में किया गया है। जो रहस्यमय है, जो भ्रामक है, जो विस्मयकारी है, जो निन्द्य है, तर्क सम्मत नहीं है, नानारूप है, वो सब माया है। स्वप्न, भ्रम, असत, वंचना आदि से आशय माया से ही है।

शंकर कहते हैं माया को त्यागो और उस परम सत्य का साक्षात्कार करो।

दिन यामिन्यौ सायं प्रात:
शिशिर वसन्तौ पुनरायात: ।
काल: क्रीडति गच्छत्यायु-
स्तदपि न मुञ्चत्याशावायु: ।।
भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम् ।

रात और दिन, सुबह और शाम बार-बार आते और जाते हैं। शिशिर, वसन्त व अन्य ऋतुएँ काल चक्र में क्रमश: घूमती रहती हैं। 'समय अपना खेल खेलता है, आयु घटती जाती है। परन्तु इच्छाओं में कमी नहीं होती।

तृष्णा कभी मरती नहीं, आशा तृष्णा ना मरे मर-मर जाये शरीर। भर्तृहरि ने वैराग्य शतक में तृष्णा/लालसा पर टिप्पणी करते हुए एक मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है-

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं
शय्या च भू: परिजनो निजदेहमात्रम्।
वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमयी च कन्था
हा हा तथापि विषया न परित्यजन्ति।।

मिला माँग-चाँग कर
मुश्किल से रूखा-सूखा
सोते हम जमीन पर हैं
कोई अपना कुटुम्ब नहीं
तन भर है बचा हुआ
फटा-चिटा है पहनने को
हाय, मन रसिया फिर भी।

भर्तृहरि तृष्णा के लिए कहते हैं- **'तृष्णे जृम्भसि पापकर्मपिशुने नाद्यपि संतुष्यसि'।**

ऋतुएँ आती हैं, जाती हैं, पर जो समय चला गया वह वापस नहीं आता है। शंकर कहते हैं जो बचा है उसे सँवारो, अध्यात्म को जीवन में उतारो। काल सबको खाता है। कबीर कहते हैं- जिसने अपने अहं भाव को मार दिया उसने मानो काल पर विजय प्राप्त कर ली।

घर जालौं घर ऊबरे, घर राखौं घर जाइ।
एक अचंभा देखिया, मड़ा काल को खाइ।।

यदि देह के अभिमान को नष्ट कर दें तो आत्मभाव सुरक्षित रहता है, अर्थात् विषय-रस को जला दें तो ब्रह्म-रस प्राप्त होता है। जिसने अहं भाव को समाप्त कर दिया मानो वह अमर हो गया। अन्यथा-

कबिरा कहा गरबियो, काल गहै कर केस।
ना जाणै कहाँ मारिसो कै घर कै परदेस ।।

संत कवियों ने अपनी रचनाओं में शंकर के सूत्रों का विस्तार किया है- अपनी वाणी देकर। ये रचनाएँ भज गोविन्दम् की मनोरम टीकाएँ प्रतीत होती हैं। कबीर कहते हैं-

काची काया मन अथिर थिर थिर काम करंत।
ज्यूँ-ज्यूँ नर निधड़क फिरै, त्यूं-त्यूँ काल हसंत।।

शंकर कहते हैं- **'काल: क्रीडतिगच्छत्यायु'**। दादू इसका सुंदर रूपक गढ़ते हैं-

काल-कीट तन-काठ कौं जुरा जनम कूं खाइ।

जुरा- बुढ़ापा

दादू दिन दिन जीव की आव घटती जाइ ।।

आव- आयु

शंकर कहते हैं-

मा कुरु धनजनयौवन गर्वं
हरति निमेषात्काल: सर्वम्।

वहीं दादू ज्यादा मुखर और स्पष्ट हैं-

दादू धरती करते एक डग दरिया करते फाल।
हांकौ पर्वत फाड़ते, सो भी खाये काल।।

स्वामी सुन्दरदास हल्के व्यंग्य सहित कहते हैं-

सब कोऊ ऐसै कहैं काटत हैं हम काल।
काल नास सबको करै बृद्ध् तरुन अरु बाल

दरिया साहब लिखते हैं-

पाँच तत्त की कोठरी तामें जाल जंजाल।
जीव तहाँ बासा करे, निपट नगीचे काल।।

आशा कभी कम नहीं होती-

सहजो इन्द्री सब थकीं तन पौरुष भयौ छीन।
आसा तृस्ना ना घटी, सहज बचन भये दीन।।

सहजोबाई की गुरुबहिन थीं दयाबाई। **'हरित निमेषात्काल: सर्वम'** को वो कुछ इस प्रकार कहती हैं-

बड़ो पेट है काल को नेक न कहूँ अघाय।

राजा राना छत्रपति, सबकूँ लीले जाय।।

योग वाशिष्ठ में श्रीराम ने तृष्णा के लिए भिन्न-भिन्न उपमाओं के माध्यम से सुन्दर रूपक रचे हैं-

- **तृष्णा चपल मर्कटी**- तृष्णा रूपिणी चंचल वानरी।

- **अनानंदकरी शून्या निष्फला व्यर्थमुन्नता। अमंगलकारी क्रूरा तृष्णा क्षीणेव मंजरी**- दु:खदायिनी, फलों से शून्य, व्यर्थ अमंगल करने वाली, क्रूर यह तृष्णा क्षीण मंजरी है।

- **प्रयच्छति परं जाड्यं परमालोकरोधिनी**- यह जड़ता देती है और परम प्रकाश को रोकती है।

- **तृष्णा भुजंगमी** - तृष्णा रूपी सर्पिणी।

शंकर से लगभग 5 शताब्दी पूर्व भर्तृहरि ने भी वही सब कहा जिसकी वैदान्तिक अनुगूँज हमें भज गोविन्दम् में सुनाई देती है। शताब्दियों बाद यही स्वर हमें पुन: संत कवियों की बानी में सुनाई देते हैं। यह भारतीय दर्शन की आध्यात्मिक चेतना का, उसकी सनातन परम्पराओं और प्रभाव का सातत्य है।

भर्तृहरि वैराग्य शतक में कहते हैं-

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं
व्यापारैर्बहुकार्य भार गुरुभिः कालोऽपि न ज्ञायते।
दृष्टवा जन्मजरा विपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते
पीत्वा मोहमयी प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ।।

उगता है सूरज
फिर हो जाता अस्त
जीवन भी घटता जाता
हर पल साथ उसी के
काम मगर इतना करना पड़ता
चलता पता नहीं समय का
हैं व्यापार बड़े कई
बिक जाता समय भी उनमें
पी कर मोह की मदिरा
हो जाते धुत्त हम इतना
देता नहीं दिखाई हमें
कौन जन्मा कौन मरा
कौन कब बूढ़ा हुआ
किसे दु:ख की मार पड़ी
बोलो क्या कहें इसे
आदमी नहीं है पागल !

और देखिये, अगले ही श्लोक में शंकर कहते हैं- '**वातुल किं तव नास्ति नियन्ता**'।

का ते कान्ता धनगत चिंता
वातुल किं तव नास्ति नियन्ता।
त्रिजगति सज्जन संगतिरेका
भवति भवार्णवतरणे नौका।।
भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्।

अरे पागल! स्त्री धन आदि की चिन्ता क्यो करता है जो सबकी चिन्ता करने वाला है, सबका नियामक है, वौ तेरे लिए नहीं है क्या? त्रिभुवन में सत्संग ही एक मात्र नौका है जो जन्म-मृत्यु के समुद्र के पार ले जाने में सक्षम है।

वातुल- जिसकी बुद्धि ठिकाने पर ना हो पागल, भ्रान्त

पाठान्तर - कुछ पाठों में त्रिजगति के स्थान पर क्षण मति का प्रयोग मिलता है।

चिन्ता किसकी तुझे भ्रान्त नर
क्या तेरा कोई न सूत्र धर?
क्षण भर की सत्संगति तेरी
पार करा देगी भवसागर।

- अनुवाद : चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

यहाँ कान्ता से आशय भोग से है जो भोग में लिप्त है। शंकर कहते हैं यदि सत्संग रूपी नौका मिल गई तो समझ लो भवसागर पार हो गए। सत्संग से आशय है जो ईश्वर से जोड़े। इसलिए जीवन की प्रत्येक क्रिया को सत्संग बनाने का प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार पूरा जीवन जीयें वह एक सत्संग ही बन जाए। जब सत्संग मिले समझो जीवन में सत्कर्मों के पुण्यों का फल मिल रहा है। दु:ख-सुख तो सबके जीवन में आते हैं। सत्संग हमें सहने की शक्ति प्रदान करता है- '**आधोछिन सत्संग को कलमख डारै खोय**' (दयाबाई)।

जीवन में जब किसी संत का प्रवेश हो, समझो दु:खों के अंत की शुरुआत हो गई। स्वामी दादू दयाल कहते हैं-

चलु रे मन, जहाँ अमृत बनां निर्मल नीके सन्तजनां । बनां- वन तुलसी ने मानस के उत्तरकांड में लिखा है-

संत संग अपवर्ग कर कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कवि कोविद श्रुति पुरान सद्थ।।

जहाँ प- पाप-पुण्य, फ- कर्म के फल, ब- कर्म के बंधन,
भ- भवमय, म- मरण नहीं होते उस मोक्ष को अपवर्ग कहते हैं।

जटिलो मुण्डी लुञ्छित केशः
काषायाम्बर बहुकृतवेषः।
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढ़ो
उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः ।।
भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्।

भज गोविन्दम् के कुछ श्लोक शंकर के शिष्यों द्वारा भी लिखे हुए कहे जाते हैं। यह श्लोक पद्मपाद का लिखा हुआ माना जाता है। कोई सिर मुंडाकर साधु बना हुआ है, किसी ने जटा बढ़ा रखी है, किसी ने सारे बाल नुचवा लिए हैं तो किसी ने गेरुए वस्त्रों को धारण कर रक्खा है। सभी मूर्ख हैं जो देखकर भी नहीं देख पाते। यथार्थ में इन्होंने ये तरह-तरह के भेष केवल उदर पोषण के लिए बना रखे हैं।

कोई बने महात्मा बढ़ा जटा
कोई मुण्डित सिर कटा लटा
कोई धारक काषाय पटा
ये सभी मूर्ख बहुरूपिये हैं
केवल ये उदर के पोषणीय
भज गोविन्दम्, भवतारणीय।

– अनुवाद : प्रभा तिवारी

कबीर ने ऐसे कलियुगी साधुओं पर कटाक्ष करते हुए लिखा है–

मन न रँगाये, रँगाये जोगी कपरा।
आसन मारि मंदिर में बैठे, ब्रह्म छाडि पूजन लागे पथरा।।
कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढौले, काम जलाय जोगी होइ गैले हिजरा।
जंगल जाय जोगी धुनिया रमौले, दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैले बकरा।।
मथवा मुँडाय जोगी कपरा रँगैले, गीता बाँच के होइ गैले लबरा।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, जमदरवजवा बाँधल जैबे पकरा।।

तुलसी ने भी रामचरित मानस में इन ढोंगी और कलयुगी साधुओं का वर्णन किया है–

मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई।।
जाके नख अरु जटा बिसाला। सोई तापस प्रसिद्ध कलिकाला।।
असुभ वेष भूषन धरें भच्छा भच्छ जो खाहिं।
तेई जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहि।।

शंकर यहाँ कहते हैं– '**पश्यन्नपि न पश्यति मूढ़ो**' जो देखकर भी नहीं देख पाते वे मूर्ख हैं।

परिपक्वता आयु के साथ नहीं आती। जो ज्ञान के बावजूद भीसंसार में लिप्त हैं, वे अपरिपक्व हैं, मूढ़ हैं। भारत में संन्यासियों की बड़ी प्रतिष्ठा है। संन्यासी की वृत्ति है, वैराग्य। पर ये संन्यासी उदरपूर्ति के लिए चोला धारण करते हैं। यथार्थ में ये संन्यासी नहीं हैं– बहुरूपिये हैं– बहुतकृतवेष: हैं।

भर्तृहरि, वैराग्य शतक में अपनी चिर-परिचित शैली और भाषा के सहारे सच्चा संन्यासी कौन? इसका सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हैं–

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरंगाकुला
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्यंसिनी।
मोहावर्त सुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुंग चिन्तातटी
तस्या: पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वरा: ।।

आशा नाम की नदी
कामनाओं के जल से भरी हुई
लहरें उस पर तृष्णा की अकुलाई
रहता वहीं रस-व्याकुल
राग का मगरमच्छ सनातन
धैर्य-वृक्ष को उखाड़ा करते
तर्क-वितर्क के जल-पाखी
मोह-भँवर गहरे दुस्तर
जल धाराओं पर पड़ते
कूल किनारे चिन्ताओं के
ऊँचे-ऊँचे बीहड़ विकट
पार करे इसे जो योगी
सुख क्या, सच में जाने वह।

अंगं गलितं पलितं मुण्डं
दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वादण्डं
तदपि न मुंचति आशा पिण्डम्।।
भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्।

यह श्लोक त्रोटकाचार्य का लिखा हुआ माना जाता है।

शरीर शिथिल हो गया है, बाल पक गए हैं। दाँत गिर गए हैं। बूढ़ा अब लाठी के सहारे ही चल सकता है। फिर भी वह आशाओं की गठरी को नहीं छोड़ता।

हो गए क्षीण सब अंग जभी
और केश श्वेत हो गये तभी
कर गए किनारा दंत सभी
लकड़ी का सहारा ले गठरी
चलता, फिर भी मन कमनीय।
भज गोविन्दम्, भव तारणीय।।

– अनुवाद : प्रभा तिवारी

यह श्लोक एक साधारण मनुष्य की राम कहानी है। वृद्धावस्था में भी ऐन्द्रिय सुखों की लालसा बनी रहती है। आशाएँ बढ़ती जाती हैं। जितनी आशाएँ, जितनी लालसाएँ उसी अनुपात में दु:ख बढ़ता है। यहाँ यह संकेत दिया गया है कि मुक्ति के लिए, आनन्द और संतोष के लिए लालसाओं, तृष्णाओं, आशाओं और कामनाओं पर नियंत्रण रखना चाहिए। वृद्धावस्था में यह नियंत्रण दृढ़ हो इसलिए युवावस्था से ही इसका अभ्यास करना चाहिए क्योंकि जैसे-जैसे शरीर पुराना और शिथिल होता जाता है, वैसे-वैसे इच्छाएँ प्रबल होती जाती हैं।

यहाँ शंकर ने शरीर के विकास की स्थितियों को आध्यात्मिक स्पर्श की चित्रोपमता के साथ प्रस्तुत किया है।

हाथों में ताकत नहीं बची फिर भी प्यास है कि मिटती नहीं–

गो हाथ को जुंबिश नहीं, आँखों में तो दम है।
रहने दो अभी साग़रो-मीना मेरे आगे।।

– ग़ालिब

वृद्धावस्था में भी लालसाएँ साथ नहीं छोड़तीं। ग़ालिब इसी गिरफ्त में हैं, मगर वो हक़ीकत से परिचित हैं, इसलिए लिखते हैं–

फलक से, हमको ऐशे रफ्ता का, क्या-क्या तकाजा है।
मता 'ए बुर्दा को समझे हुए हैं कर्ज रहज़न पर।

(शेष अगले अंक में)

लेखक वरिष्ठ साहित्यकार एवं सेवानिवृत प्राध्यापक है
संपर्क : आर 36 महालक्ष्मी नगर इंदौर(म.प्र.)
मो. 9827459970

■

सन्त कबीर

सन्त कबीर का जन्म संवत् 1456 (ईसवी सन् 1398) में हुआ और 120 वर्ष की आयु में संवत् 1575 (ईसवी सन् 1518) में परलोक सिधारे। उनका आविर्भाव काशी के लहरतारा में हुआ और बस्ती जिले के मगहर में उन्होंने पार्थिव शरीर का त्याग किया। सन्त कबीर का लालन-पालन नीरू और नीमा जुलाहा दंपत्ति ने किया। इतिहास में प्राप्त जानकारी के अनुसार सन्त कबीर सिकन्दर लोधी (1489-1570ई.) के समकालीन थे। इसी काल में पीर शेख तकी भी हुए हैं। सन्त कबीर कपड़ा बुनते थे। मगहर में उनकी समाधि आज भी राष्ट्रीय एकता का बेमिसाल प्रतीक है, जहाँ देश ही नहीं विश्व के कोने-कोने से श्रद्धालु आते हैं।

भक्त का हृदय धारण करने वाले सन्त कबीर ने बाल्य काल में ही काशी में स्वामी रामानन्द से दीक्षा ली थी। स्वामी रामानन्द ने लोक कल्याण के लिए भक्ति के द्वार सभी जातियों के लिए खोल दिये। उन्होंने उपासना के क्षेत्र में देश, वर्ण और जाति भेद से ऊपर उठकर सबके समान अधिकार को स्वीकार किया। वे भक्ति में किसी भेदभाव को आश्रय नहीं देते थे।

नाभाजी कृत प्रसिद्ध प्राचीन ग्रन्थ भक्तमाल में रामानन्द जी के बारह शिष्य कहे गये हैं जिनमें अनंतानन्द, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानन्द, भावानन्द, कबीर, सेन, धना, रैदास, पद्मावती, सुरसुरी और गाँगरौनगढ़ के राजा सन्त पीपा प्रमुख हैं। स्वामी रामानन्द के मत में भक्ति ही सबसे बड़ी चीज थी; तत्ववाद नहीं। सन्त कबीर ने स्वामी रामानन्द के अनन्य भक्ति के उपदेश को पूरी तरह स्वीकार किया किन्तु बाकी तत्व ज्ञान को उन्होंने अपने संस्कारों, रुचि और शिक्षा के अनुसार नया रूप दिया।

सन्त कबीर का लालन-पालन और संस्कार उन लोगों के बीच हुआ जिन्हें तत्कालीन समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी। इस काल में वे कुल-परम्परा से ज्ञान प्राप्त करने के अयोग्य समझे जाते थे। वे गरीबी में ही जनमते थे, उसी में पलते थे और उसी में मर जाया करते थे। सन्त कबीर इसी समाज के रत्न थे। ऐसी सामाजिक परिस्थितियों में पैदा हुए व्यक्ति के लिए कल्पित ऊँच-नीच भावना और जाति व्यवस्था का फौलादी ढाँचा तर्क और बहस की वस्तु नहीं; जीवन-मरण का प्रश्न होता है। इसी कारण सन्त कबीर की वाणी अनुचित सामाजिक क्रिया- कलापों और पाखण्डों के विरुद्ध ललकार बनकर उभरी है।

सन्त कबीर की वाणी निर्गुण बानी कहलाती है। इनके उपदेश मौखिक हुआ करते थे, जिन्हें उनके शिष्यों ने ही संकलित किया। कबीर पंथियों में बीजक ग्रंथ को प्रामाणिक और आदि ग्रन्थ माना जाता है। कबीरपंथी सन्तों और भक्तों द्वारा इसके पाठ निर्धारण, टीका-भाष्य लेखन और चिन्तन-मनन की परम्परा आज भी जारी है। सन्त कबीर के शिष्यों द्वारा बीजक का लेखन सम्भवत: 1570 ईसवी में हुआ। महात्मा कबीर का प्रमुख साहित्य- रमैनी, साखी और शबद (पद) के रूप में बीजक में संग्रहीत है।

बीजक में सन्त कबीर के नाम से कहरा, बसन्त, बेलि, बिरहुली, चाचर, हिण्डोला, चौंतीसी, विप्रमतीसी आदि अन्य काव्य रूपों में लिखा साहित्य भी पाया जाता है। इनमें से एक-एक अध्याय को अलग करके नयी और स्वतंत्र पुस्तकें भी बना दी गयी हैं।

सिख सम्प्रदाय के आदि गुरु नानकदेव भी निर्गुण उपासक थे। भक्ति भाव से परिपूर्ण होकर वे जो भजन गाया करते थे उनका संग्रह सिखों के धर्म ग्रन्थ श्री गुरुग्रन्थ साहब में किया गया है। श्री गुरुग्रन्थ साहब

में सन्त कबीर की वाणियों को भी शामिल किया गया है। ये कबीर की प्रामाणिक रचनाएँ मानी जाती हैं।

श्री गुरुग्रन्थ साहब का संकलन पाँचवें गुरु श्री अर्जुनदेव ने सन् 1604 में किया था। मध्यप्रदेश के शहडोल जिले में बिलासपुर-अमरकण्टक मार्ग पर अमरकण्टक से लगभग 6 कि.मी. दूर कबीर चौरा नामक स्थान है। यहाँ कबीर-नानक के नाम से कुण्ड हैं। ऐसी मान्यता है कि उस काल में यह स्थान सिद्ध पुरुषों के मिलन का केन्द्र था तथा यहाँ सन्त कबीर और गुरु नानक की भेंट भी हुई थी।

सन्त कबीर ने दूर-दूर तक देशाटन करते हुए हठ योगियों और सूफी मुसलमान फकीरों का भी सत्संग किया था। उन्होंने हिन्दू साधु-सन्यासियों से ज्ञान मार्ग का जो उपदेश पाया उसमें सूफियों के सत्संग से मिले प्रेम तत्व को घोल दिया। सन्त कबीर ने व्यर्थ के लोकाचारों और कर्मकाण्ड में उलझे भारतीय समाज को राम-रहीम की अनन्य एकता समझाते हुए प्रेम से भरे हृदय का उपदेश दिया। रूढ़ियों पर प्रहार करने वाली उनकी उलटबाँसियाँ और व्यंग्यपूर्ण उक्तियाँ समूचे भारतीय समाज को आज भी आंदोलित करती हैं। उनके पद लोगों के दिलों में उतर जाते हैं। वे सबको राह दिखाते हैं और कदम-कदम पर सबका साथ देते हैं। सन्त कबीर सत्य के जिज्ञासु थे और कोई मोह-ममता उन्हें अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकती थी।

उनके प्रमुख शिष्यों में वर्तमान मध्यप्रदेश के बाँधवगढ़ के रहने वाले सन्त धर्मदास जी हुए हैं, इनके अलावा श्री सुरत गोपाल साहेब, श्री जागू साहेब, श्री भगवान साहेब, श्री तत्वा साहेब, श्री जीवा साहेब, श्री ज्ञानी साहेब, श्री पद्मनाभ साहेब और श्री कमाल साहेब हुए हैं। महात्मा कबीर के शिष्यों द्वारा चलाये गये कबीर पंथ का प्रभाव पूरे देश के साथ-साथ मध्यप्रदेश के जन जीवन पर पड़ा है। मध्यप्रदेश में उनके अनुयायियों के अनेक केन्द्र हैं। भारत के इस हृदय प्रदेश का व्यापक हिस्सा सन्त कबीर के मर्म में डूबा हुआ है।

सन्त कबीर के सर्वमान्य अध्येता आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के मर्म को प्रकट करते हुए कहा है कि 'वे ज्ञान के हाथी पर चढ़े हुए थे पर सहज का दुलीचा डाले बिना नहीं। वे भक्ति के मंदिर में प्रविष्ट हुए थे पर खाला का घर समझकर नहीं। उन्होंने बाह्याचार का खंडन किया था पर निरुद्देश्य आक्रमण की मंशा से नहीं। वे भगवान के विरह की आँच में तपे थे पर आँखों में आँसू भरकर नहीं। भगवान के नाम पर पाखण्ड रखने वालों को उन्होंने कभी छूट नहीं दी। युगावतारी शक्ति और विश्वास लेकर वे पैदा हुए थे और युग प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें थी। वे सिर से पैर तक मस्तमौला थे।'

भारत के हजारों वर्ष के इतिहास में ऐसा समय आया है जब भारतीय समाज अंधविश्वासों और रूढ़ियों में फँसता चला गया और सन्त कबीर जैसे युग प्रवर्तकों ने उसे संकट से उबारा। भारत की आजादी के पिच्चहत्तर वर्षों में अब तक अनेक अंधविश्वास दम तोड़ चुके हैं। यदि हम आज भी सन्त कबीर की साखी उठाकर उनके बताये मार्ग का अनुसरण कर सकें तो अंधविश्वास और सामाजिक कुरीतियों से दूर प्रेममय और अहिंसक समाज की रचना करने में कोई देर न लगेगी।

स्त्रोत : मध्यप्रदेश जनसंपर्क संचालनालय

■

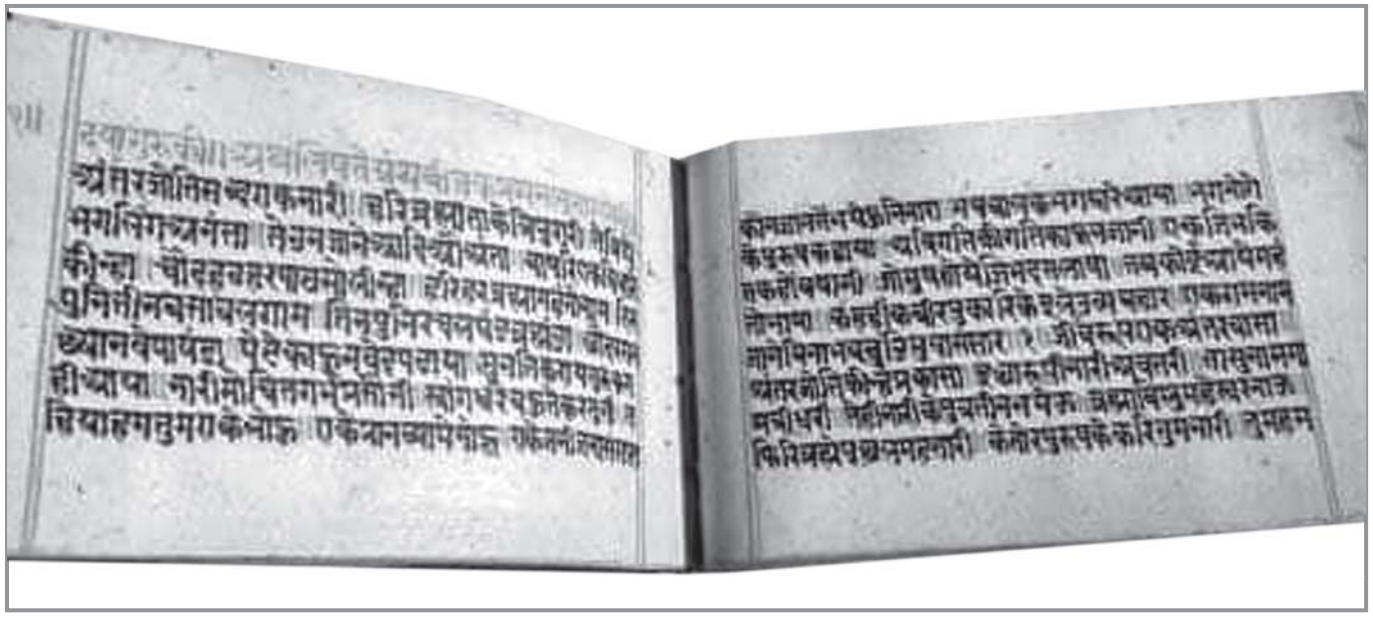

कबीर बीजक की एक पांडुलिपि : वृंदावन शोध संस्थान, वृंदावन में संग्रहित।

आलेख

सामरस्य की भक्ति के सूत्रधार कबीर

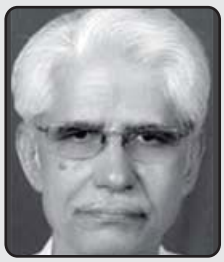

प्रभुदयाल मिश्र

भारत के महान संतों की परंपरा में 13 वीं सदी में उत्तर भारत में समुत्पन्न श्रीमदाद्याचार्य रामानंद जी के शिष्यों की संख्या हजारों में थी। गंगा किनारे पंचगंगा घाट पर उनके मठ में ही सैंकड़ों शिष्य एक साथ रहते थे। इन तमाम शिष्यों में निम्न विभिनन वर्ग और जातियों के 12 शिष्य प्रमुख थे-

1. **अनंतानंद:** ब्राह्मण। इनके शिष्य नरहर्यानंद के शिष्य गोस्वामी तुलसीदास हुए।
2. **पीपा:** गागरोन गढ़ राजस्थान के क्षत्रिय राजा, कवि।
3. **कबीर :** जुलाहे । प्रत्येक धार्मिक कट्टरता पर प्रहार करने वाले संत और पथ प्रदर्शक प्रहरी
4. **धन्ना जाट :** कवि, राजस्थान के टोंक के धवन ग्राम निवासी। सिक्खों से भी बहुत सम्मानित।
5. **सेनाचार्य :** नाई व संत थे। बघेलखंड के रहने वाले थे। गुरुग्रंथ में शामिल कवि हैं।
6. **रविदास :** जाति से चर्मकार । कवि, गृहस्थ संत। राम राम भजते चमड़े का काम करते थे।
7. **शिष्या सुरसरी :** लखनऊ के पैखम ग्राम की थीं। दक्षिण भारत में सेवा को समर्पित हुई।
8. **शिष्या पद्मावती :** शिष्या, त्रिपुरा की थीं। वाराणसी में ही जनजागृति में जुटी रहीं।
9. **सुरसुरानंद :** लखनऊ के पैखम ग्राम से। ये संत शिष्या सुरसरि के पति भी थे।
10. **सुखानंद :** रामानंदाचार्य जी के पट्ट शिष्यों में। राम भक्ति धारा को फैलाया।
11. **नरहरिदास:** गोस्वामी तुलसीदास के गुरु।
12. **भावानंद :** राम भक्ति धारा में समर्पित हुए।

संत कबीर को काशी में कोई संत-महात्मा नाम दीक्षा देने के लिए तैयार नहीं था। अत: वह ब्रह्ममुहूर्त में पंचगंगा घाट की सीढियों पर आकर लेट गए। रामानंदाचार्य जब तड़के गंगा स्नान हेतु जा रहे थे तो उनके पैर अंधेरे में संत कबीर पर पड़ गए। उन्होंने कबीर को उठाकर अपने गले से लगा लिया। संत कबीर ने रामानंदाचार्य महाराज से दीक्षा प्राप्त करने के बाद जाति-पांति, ऊंच-नीच, पाखंड और अंधविश्वासों का आजीवन पुरजोर विरोध किया।

संत परंपरा में यह भी मान्यता है कि उक्त सभी महाभाग रामानन्द जी के शिष्यों के रूप में विश्व के कल्याणार्थ देवताओं और ऋषियों के ही अवतार थे 1. श्री अनन्तानन्द- जी ब्रह्मा जी, 2. श्री सुखानन्द जी शंकर जी, 3. श्री योगानन्द जी कपिल देव जी, 4. श्री सुरसुरानन्द जी नारद जी, 5. श्री गालवानन्द जी शुकदेव जी, 6. श्री नरहरियान्द सनतकुमार जी, 7. श्री भावानन्द जी जनक जी, 8. श्री कबीरदास जी प्रहलाद जी. 9. श्री पीपा जी राजा मनु जी, 10. श्री रैदास जी धर्मराज जी, 11. श्री धन्ना जाट जी राजा बलि जी और 12. श्री सेन भक्त जी भीष्म जी।

सामाजिक सामरस्य की दूसरी मजबूत भित्ति रैदास के संबंध में तो भक्तमाल के प्रणेता नाभादास जी की यह अमिट साक्ष्य सर्वथा ही स्मरणीय है -

वर्णाश्रम अभिमान तज, पद राज बंदहि जासु की।
संदेह ग्रन्थि खंडन निपुण, वाणी विमल रैदास की॥

यह प्रसिद्ध ही कि रैदास जी ने एक बार काशिराज को अपने उपयोग के पानी के कठौते से कुछ जल प्रदान किया तो काशिराज ने उसका पान न करते हुए अपने ऊपर छिड़क लिया जिससे उनके राजकीय वस्त्र पर कुछ दाग सा दिखा। इसे उन्होंने जब धोने के लिए धोबी को दिया तो उसमें सहसा महान भक्ति का उदय हो गया। बाद में राजा को अपनी त्रुटि पर पछतावा ही शेष रहा । यह भी कहा जाता है कि गुरु गोरखनाथ को भी उन्होंने अपने कठौते का जल पीने को दिया जिसे संत कबीर की बेटी ने पिया । इससे उसमें इतनी सामर्थ्य आ गई कि अपने व्याह के बाद मुल्तान पहुंचकर उसने गोरखनाथ की खाली झोली को चावल के कुछ दानों से भरकर अपना कमाल दिखाया ! मीरा के द्वारा रैदास से विधिवत दीक्षा का प्रमाण तो स्वयं मीराबाई ही कृपा पूर्वक उनके द्वारा अपना लेने के बाद 'अमोलक बस्तु' के रूप में 'राम रतन' धन प्राप्त करना स्वीकार करती हैं।

भारत में सामाजिक समरसता के पाठ का आरंभ हम साधारणतया 19 वीं सदी के सामाजिक सुधार आंदोलन से मानते हैं किन्तु इसकी वास्तविक शुरुआत तो सर्वसमावेशी इस वैष्णव आंदोलन से ही की गई थी। श्री रामानन्द जी ने भगवान राम की भक्ति के दरवाजे सभी के लिए खोल दिए। इसके परिणाम स्वरूप जातियों में बंटे देश को मजबूत करने के लिए उनके युग की यह पहचान सार्वलौकिक हुई

'जात पात पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।'

उन्हीं के ज्ञान से देश में यह धारा भी उपजी जिसने जयघोष किया कि

'जात न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।'

तीर्थ यात्रा के लिए रामानंदाचार्य ने पूरे देश का भ्रमण किया था, उनका 100 साल से ज्यादा का जीवन रहा। सात्विक और संत जीवन वाले रामानंदाचार्य जी ने जहां एक ओर सगुण धारा को प्रबल किया, जिसमें आगे चलकर तुलसीदास जी हुए, तो दूसरी ओर निर्गुण धारा को भी अवसर दिया, जिसमें संत कबीर हुए।

वैष्णव परंपरा में श्री रामानन्द जी को तो साक्षात् राम का ही ऐसा अवतार माना जाता है जिसने भारतीय समाज को संगठित और संरक्षित करने का अप्रतिम कार्य किया। एक कथानक के अनुसार तत्कालीन अयोध्या के राजा हरीसिंह जी तुगलक के भय से वैशाख शुक्ल दशमी विक्रम संवत 1381 को अयोध्या छोडकर तराई चले गए। तुगलक ने बीस हजार राजपूतों को बलात् मुसलमान बना लिया। इस सूचना पर स्वामी जी ने कहा कि उक्त तिथि के तीसवें दिन सभी प्रात:काल में सरयू तट पर एकत्रित हो जाएँ, वे वहाँ पहुंचेंगे। यथासमय सभी वहाँ एकत्रित हुये। सबने सरयू में स्नान किया। तब पूज्य आचार्य ने राममन्त्र का उच्चारण कर शंख ध्वनि करते हुये सभी को शुद्ध घोषित कर दिया।

अपने घर वापस लौटे हिन्दू भाइयों को जब कुछ धर्मान्धों ने हिन्दू मानने से इंकार किया तो पूज्य आचार्य ने उन्हें समझाया-

कथं वा वेदरक्षा स्यात्कथं देवादिपूजनम्
कथं श्राद्धसदाचार: कथंतीर्थाभिरक्षणम्।
गवादि प्राणीनां रक्षा कथमकारं भविष्यति
सतीत्वापि नामात्र स्मर्तव्यद्वी व्रजेत्।
एते ये चाद्य युस्माभिस्त्यजंते ते न दूषिता
बलात्कारेण पातित्यं पातित्यं तन्न संमतम्।

अर्थात् इस प्रकार वेद रक्षा, देवताओं का पूजन, श्रद्धादि तर्पण और तीर्थ रक्षा कुछ भी संभव नहीं होगा। गो आदि प्राणि की रक्षा, सती स्त्रियाँ का सतीत्व आदि तब केवल स्मृति ही शेष होगी! जिन लोगों का तुम त्याग कर रहे हो, वे दूषित नहीं हैं। उन्हें केवल यंत्रवत पतित किया गया है। बलात्कार का पातित्य कदापि कोई पतन नहीं हो सकता!

5 फरवरी 2022 को प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने हैदराबाद में रामानुजाचार्य जी की हजारवीं जयंती पर आयोजित भव्य सहस्राब्दी समारोह में स्टेचू आफ ईक्वालिटी नाम की 216 फीट ऊंची और 120 किलो सोने की प्रतिमा का अनावरण कर इसका संस्थापन सम्पन्न किया गया। विश्व की दूसरी सबसे ऊंची इस प्रतिमा को स्वभावत: गिनीज बुक में भी स्थान मिला। श्री रामानंद जी की भक्ति परंपरा में विशशिष्टाद्वैत दर्शन के मान्य संस्थापक श्री रामानुजाचार्य जी वर्ष 1017 में तमिलनाडु के श्रीपेरांबूदूर मैं जन्मे थे। उन्होने यद्यपि आदि शंकर की परंपरा में अद्वैत वेदान्त की शिक्षा प्राप्त की थी किन्तु श्री यमुनाचार्य जी से वैष्णव दीक्षा प्राप्त कर वे सर्व सुलभ विशिष्ट सगुण ब्रह्म मत 'विशिष्टाद्वैत' के सूत्रधार बने जिससे भारत में सगुण भक्ति की रामाश्रयी और कृष्णाश्रयी धाराएँ निसृत हुई । इनमें क्रमश: रामाश्रयी में द्वादश महाभाग संत और कृष्णाश्रयी में अष्टछाप (सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, कृष्णदास, नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी और छीतस्वामी) भक्त कवियों ने जन्म लिया जिंहोने पराधीन भारत की चेतना में नूतन ऊर्जा का संचार किया।

17 वीं सदी के मध्य में भारतीय संत परंपरा के प्रामाणिक भक्त इतिहासकार संत नाभादास के भक्तमाल में कबीर की सामरस्य की भक्ति के संबंध में कहा गया है

भगति विमुख जे धर्म सो सब अधर्म करि गाए।
योग यज्ञ व्रत दान भजन बिन तुच्छ दिखाए।।

कवि कहते है कि जो व्यक्ति भक्ति से विमुख हो जाता है वह अधर्म में लिप्त व्यक्तियों की तरह कार्य करता है। कबीर ने भक्ति के अतिरिक्त अन्य सभी क्रियाओं जैसे योग, यज्ञ, व्रत, दान, भजन सभी को तुच्छ कहा है।

हिंदू तुरक प्रमान रमैनी सबदी साखी।
पक्षपात नहिं बचन सबहिके हितकी भाषी।।

नाभादास कहते है कि कबीर ने हमेशा हिन्दू और मुसलमान को प्रमाण और सिद्धांत की बात कही है। कबीर ने कभी भी पक्षपात नहीं किया है उन्होंने हमेशा सबके हित की बात कही है।

आरुढ़ दशा ह्वै जगत पै, मुख देखी नाही भनी।
कबीर कानि राखी नहीं, वर्णोश्रम षट दर्शनी।।

कबीर जी की मति अति गंभीर तथा अन्त:करण भक्ति रस से परिपूर्ण था। भाव भजन में पूर्ण कबीर जाति-पाँति वर्णाश्रम आदि साधारण धर्मों का आदर नहीं करते थे। नाभादास कहते हैं कि कबीर जी ने चार वर्ण, चार आश्रम, छ: दर्शन किसी की आनि कानि नहीं रखी। केवल श्री भक्ति (भागवत धर्म) को ही दृढ़ किया। वही भक्ति के विमुख जितने धर्म हैं, उन सबको अधर्म ही कहा है। उन्होंने सच्चे हृदय से सप्रेम भजन (भक्ति, भाव, बंदगी) के बिना तप, योग, यज्ञ, दान व्रत आदि को तुच्छ बताया। कबीर ने आर्य, अनार्यादि हिन्दू मुसलमान आदि को प्रमाण तथा सिद्धांत की बात सुनाई। भाव यह है कि कबीर जाति-पाँति के भेदभाव से ऊपर उठकर केवल शुद्ध अन्त:करण से की गई भक्ति को ही श्रेष्ठ मानते हैं।

कबीर 'कागद की लेखी' की बजाय 'आँखन की देखी' पर, विश्वास करते थे। सप्रश्य-अस्पर्श्य, ऊंच-नीच का सवाल उनके लिए एकदम बेमानी था क्योंकि सभी 'एक नूर' से ही तो उपजते हैं। कर्मकांड और बाह्याचारों की उन्होंने जमकर धज्जियां उड़ाई। उन्होंने राम को घट के भीतर ही देखने और पहचानने का आग्रह किया। कबीर का धर्म सच्चाई, सेवा, त्याग, परदुखकातरता, मेहनत और मशक्कत की कमाई तथा सादगीपूर्ण जीवन का पर्याय है। पंडितों की नगरी काशी में वे स्वाभिमान पूर्वक लंबे समय तक जिए और मरने के लिए उन्हें चुनौती देते हुए 'मगहर' का चुनाव किया। यह उनका अहंकार न होकर उस राम की अनन्यता का बोध था जो 'कस्तूरी मृग' अथवा पुष्प की 'बास' जैसा सदा सर्वदा सभी की तरह उनके भीतर विद्यमान था मात्र इस फर्क के कि उन्हें यह पता भी था जबकि अन्य यह कहते तो हैं किन्तु न तो उन्हें इसका विश्वास होता है और न ही कोई तत्व ज्ञान। अस्तु इत्यलम्

लेखक : तुलसी मानस भारती पत्रिका के प्रधान संपादक हैं।
35 ईडन गार्डन, चुनाभ ट्टी, कोलार रोड, भोपाल 462016 मो. 9425079072

आलेख

संत कबीरदास जी

– डॉ. दलजीत कौर

भारत, संतों और महान कवियों की भूमि है, जिसने सदियों से पवित्र पुरुषों और तपस्वियों का सम्मान किया है। भक्ति आंदोलन के महान नेताओं में से एक ओर हिंदू-मुस्लिम एकता के अग्रदूत संत कबीर थे। बचपन से ही कबीर भक्ति करते थे जो और अपनी भावनाओं और दार्शनिक स्वभाव के थे। जो आम लोगों को आसानी से समझ में आ जाती थी। कबीर को उनकी कविताएँ समय और स्थान से परे कई पारंपरिक बंधनों को तोड़ती हैं। पीड़ा को ऐसी भाषा में व्यक्त एक विद्रोही कवि माना जाता है और कबीर का पेशा बुनाई था। अपने एक कवि दार्शनिक ने अपने कमजोर शरीर की दोहे में, तुलना खुद से बुने हुए कपड़े के नाजुक टुकड़े से की है, जिसका उन्होंने जीवन भर बहुत सावधानी से इस्तेमाल किया और (मृत्यु के समय) इसे उसके मूल रूप में लौटा दिया। कबीर से प्रेरित होकर, महात्मा गांधी ने भी भारत में ब्रिटिश शासन के खिलाफ़ लड़ने के लिए बुनाई और चरखे को अपना आधार बनाया। कबीर की शादी लोई इसे हुई थी और भी अपने समय का एक प्रसिद्ध संत उनका बेटा कमाल था। जब कबीर की मृत्यु हुई तो उनके मुस्लिम और हिंदू अनुयायियों में उनके शरीर के अंतिम संस्कार को लेकर झगड़ा शुरू हो गया, लेकिन जब उन्होंने उनके शरीर को ढंकने वाली चादर को हटाया, तो कहा जाता है कि उन्हें कफन के नीचे फूलों का ढेर मिला। उन्होंने फूलों को बराबर बाँट लिया और अपनी धार्मिक मान्यताओं के अनुसार उनका अंतिम संस्कार किया। कबीर ने सैकड़ों पद्यों की रचना की है, जिन्हें कबीर-बानी के रूप में संकलित किया गया है। उनके कई भजनों को सिखों के पाँचवें गुरु, गुरु अर्जन ने संकलित किया और श्री गुरु ग्रंथ साहिब में शामिल किया। उनकी भक्ति का मार्ग सार्वभौमिक है और सभी के लिए समान रूप से खुला है। कबीर के अनुयायी कबीर पंथी के रूप में जाने जाते हैं। संत नामदेव जी महाराष्ट्र के संत-कवि और कबीर के समकालीन नामदेव (1270- 1350) ने पंढरपुर के देवता- श्री विठोबा या विठला के सम्मान में बहुत ही सरल और भावुक गीत लिखे, जिस नाम से महाराष्ट्र में भगवान कृष्ण की पूजा की जाती है। उनके गुरु संत ज्ञानेश्वर थे और उनकी प्रसिद्ध पुस्तक ज्ञानेश्वरी ने नामदेव के मन पर जबरदस्त प्रभाव डाला। विठोभा के प्रति उनका समर्पण और भक्ति अद्वितीय और अद्वितीय थी। उन्हें पूरे भारत की यात्रा करने और अपनी कविता गाने के लिए जाना जाता है। पंजाब के गुरदासपुर के घुमन गाँव में बीस साल रहने के बाद उनकी शिक्षाएँ आज भी पंजाब में बहुत लोकप्रिय हैं। उनके कई पद सिखों की पवित्र पुस्तक श्री गुरु गुरु ग्रंथ साहिब का हिस्सा हैं। उनके अभंग या भजन नामदेव गाथा में एकत्र किए गए हैं। । संत रैदास (1450-1520) भारत के एक अन्य संत-कवि थे जो मोची परिवार में पैदा हुए थे और भगवान के प्रति अत्यधिक समर्पित थे और एक शुद्ध और सरल जीवन जीने का प्रयास करते थे। भारत में सम्मानित उन्होंने जाति व्यवस्था और छुआछूत का विरोध किया। भगत पीपाजी मूल रूप से एक राजपूत राजा थे और राजा पीपाजी या प्रताप राव का जन्म राजस्थान के गागरोन राज्य में एक खीची चौहान राजपूत परिवार में हुआ था। भगत पीपाजी को पीपा बैरागी के नाम से भी जाना जाता है संत दादू ने अपने पदों में लिखा है कि नामदेव, पीपाजी और रैदास सर्वशक्तिमान से मिले और उनके प्रेम की मदिरा पी। रैदास कर्म के बंधनों को काटते हैं। उनकी कुछ रचनाएँ आज भी लोकप्रिय हैं।

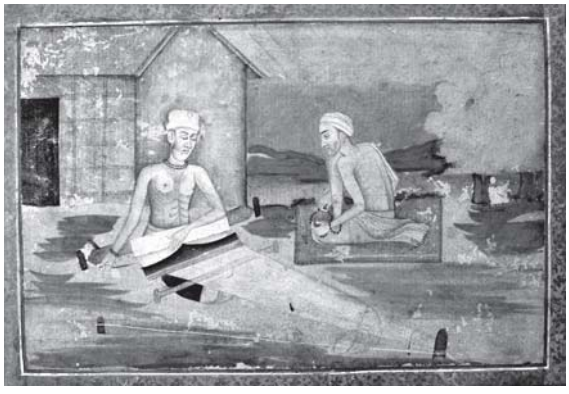

इस पेंटिंग का मुख्य आकर्षण कबीर नामक जुलाहे का शांत वातावरण और सादा जीवन है। उन्हें भारत के अन्य संतों, नामदेव, पीपाजी और रैदास या रविदास के साथ दिखाया गया है। जयपुर के कलाकार ने सादे पृष्ठभूमि पर अपने कैनवास पर चार समकालीन संतों को चित्रित किया है और ऐसा लगता है कि वे भारत के इन पूजनीय संतों को अपनी श्रद्धांजलि दे रहे हैं। कबीर को बुनाई करते हुए दिख दिखाया गया है और सफेद बूटीदार चोगा पहने विनम्र संत नामदेव उन्हें प्रशंसा भरी निगाहों से देख रहे हैं। पीपाजी और रैदास को अपने हाथों में झांझ पकड़े हुए दिखाया गया है और ऐसा लगता है कि कबीर बुनाई करते हुए गा रहे हैं और संत उनका साथ दे रहे हैं। सभी संतों की पहचान देवनागरी लिपि में शिलालेखों से की जा सकती है।

(प्रसिद्ध कला इतिहासकार, कुछ समय पूर्व निधन। उन्होंने राष्ट्रीय संग्रहालय की चित्र संपदा पर बहुत लिखा। यह आलेख उनके अंग्रेजी लेख का संक्षिप्त अनुवाद है। मुम्बई) ■

आलेख

निमाड़ के कबीर

डॉ. सुमन चौरे

जीव जगत, ब्रह्म-परिब्रह्म का ताना-बाना बुनकर संत कबीर ने झीनी-झीनी चदरिया बुन डाली। कभी संत कबीर कह उठते हैं-

यह तन विष की बेलरी,
गुरु अमृत की खान।
तो कभी कहते हैं
शीश दिए जो गुरु मिले
तो भी सस्ता जान।

संत कबीर की वाणी में गुरु की प्रशंसा करने वाले पदों की गहराई मापना असंभव-सा कार्य है। यह साहित्यिक शोध का नहीं अपितु आध्यात्मिक चेतना के गहन अनुभव का विषय है। आचार्य राममूर्तिजी त्रिपाठी कहते थे, कबीर से छोटा सा छोटा और बड़ा से बड़ा इस सृष्टि में दूसरा कोई नहीं हुआ है।

भौतिक विभाजनों से ऊपर उठकर गूढ़तम ज्ञान को कबीर ने लोक के लिए सरल शब्दों में पिरोकर सर्वव्यापी बना दिया। वो सीधे ही लोक से जुड़े- कहत कबीर सुनो भई साधो। यही शैली संत कबीर के समकालीन और उनके बाद के संतो ने परब्रह्म का सत्य सामने रखने के लिए सहज ही अपना ली।

निमाड़ के संत सिंगा ने 'कहे जन सिंगा' और 'सुनो भाई साधो' के द्वारा लोक को अपना अनुभव समझाया। ये वे अनुभव थे जो सिंगाजी को उनकी गुरु परम्परा और गुरु कृपा से हुए थे। सिंगाजी की परचरी के अनुसार, एक बार किसी कार्य के लिए जाते समय मार्ग में सिंगाजी को निमाड़ के प्रसिद्ध संत मनरंगीर स्वामी भजन गाते हुए मिले। ब्रह्मगीर स्वामी के शिष्य मनरंगीर स्वामी थे। अपने गुरु मनरंगीर स्वामी के मुँह से भजन सुनकर सिंगाजी को वैराग्य उत्पन्न हो गया। वे मनरंगीर स्वामी के पास गए और उनसे दीक्षा देने की स्तुति की।

सिंगाजी की परचरी में कहा है -

उतते आये मनरंग देव, हरि गुण गावे निरगुण भेवऽ
तिने समें सुरत समाणी कान, मानो सिंगाजी के मन उपजो ज्ञानऽ

भावार्थ: सिंगाजी ने मार्ग में एक बार उधर से आते हुए मनरंग देव के मुँह से श्रीहरि का गुणगान सुना। मनरंग देव की सूरत सिंगाजी के मन में समा गई और उनके मन में ज्ञान उत्पन्न हो गया।

सिंगाजी संन्यास लेना चाहते थे, किन्तु उनके गुरु ने उन्हें संन्यास लेने से मना कर दिया। सिंगाजी गृहस्थ संत थे।

कुछ समय बाद सिंगाजी अपने गुरु के पास दूसरी बार पहुँचे और बहुत अनुनय विनय करने पर मनरंगीर स्वामी ने सिंगा को उपदेश दिया। तब सिंगाजी ने मोह-माया त्यागकर निर्गुण भक्ति की शरण ले ली।

संत कबीर ने गुरु के महात्म्य को गुरुतम बताया। उन्होंने कहा कि बिना गुरु की कृपा के बिना जीवन सफल नहीं है। मोह-माया के जाल से बाहर निकालने के लिए गुरुकृपा का ही आसरा है। लोक संत सिंगाजी ने बारम्बार सभी से कहा, कि सद्गुरु की कृपा से ही जीवन सफल हो सकता है। इस जीवन का उद्देश्य मोह-माया के जाल में फँसे रहना नहीं है। जीवन का उद्देश्य गुरुकृपा से ज्ञान-भक्ति द्वारा परब्रह्म की प्राप्ति है। सिंगाजी को उनके गुरु की वाणी ने भक्ति और ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बताया।

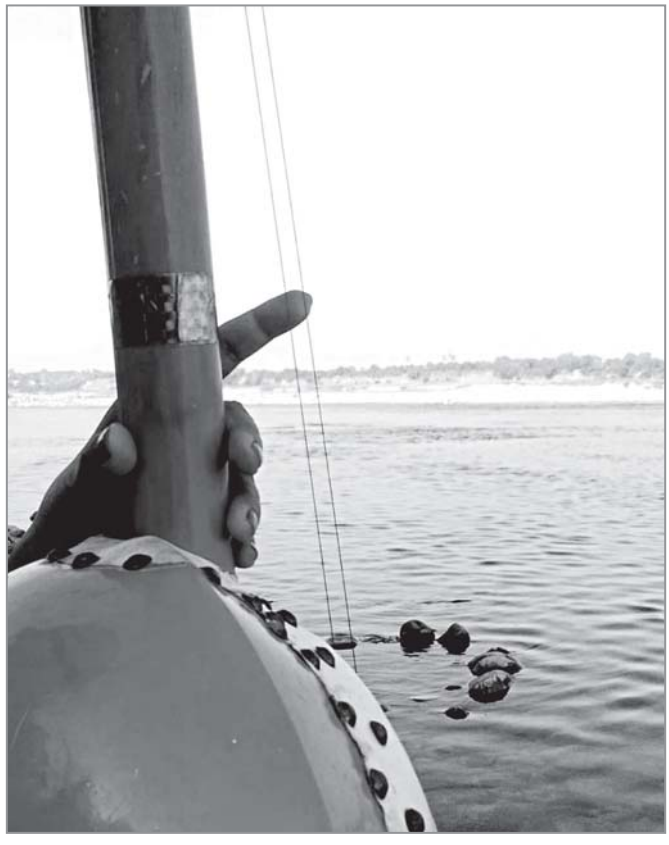

सिंगाजी ने गुरु महिमा को गाया–

मारया बाण कसी, सतगुरु मारया बाण कसी
अन्न नहीं भावे नींद नहीं आवे, तन पर विपत कसी,
तन का घाव नजर नहीं आवे, कहाँ रे लगाऊँ दवा घसी
छुरी नहीं मारी कटारी नहीं मारी, शब्द की भाल धसी
कहे जन सिंगा सुणो भाई साधु, मनरंग भाल धसी

भावार्थ: मेरे सद्गुरु ने ऐसे कस कर ज्ञान–भक्ति के बाण मारे हैं, कि वे मेरे हृदय में पीड़ा उत्पन्न कर रहे हैं। मुझे अन्न भी नहीं भाता है और नींद भी नहीं आती है। तन पर बड़ी विपत्ति आ गई है। ये ज्ञान–भक्ति के बाण ऐसे लगे हैं, कि शरीर पर कोई घाव नज़र नहीं आ रहा है, जो मैं घाव पर दवा घिसकर लगाऊँ। मेरे सद्गुरु ने न छुरी मारी है, न कटारी घोपी है, उन्होंने तो मेरे अन्तर में शब्द की भाल को धँसा दिया है। संत सिंगाजी कहते हैं, हे साधुजन सुनो! मेरे सद्गुरु मनरंगीर स्वामी ने मुझमें शक्तिपात करके अपनी प्रीत का भाला धँसा दिया है।

मध्यप्रदेश के निमाड़ में गुरु के प्रति आस्था सघन चेतना का कारण है कि यह धरा गुरुतत्वमय है। निमाड़ में रेवा और ओंकार महाराज का वास तो है ही इस भूमि ने आदि जगत गुरु शंकराचार्य को भी गुरु दिया। जो बालक सुदूर दक्षिण से ज्ञान की पिपासा लिए सद्गुरु की खोज में घूमते हुए रेवा तट पर आए और परब्रह्म की कृपा से उन्हें गुरु की प्राप्ति हुई।

संत सिंगा ने भी गुरुतत्व को समझाने में प्रचलित निमाड़ी बोली का उपयोग किया।

एक और भजन है–

गुरु म्हारो वृथा जनम गयो, नहीं मुख राम कह्यो।
एक पण खोयो मनऽ, दूजो पण खोयो
तीजा मऽ शरण गयो।।
वन खण्ड माही, गउ भैंस चराई,
जंगल वास कियो।।
गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु समाना
नैननऽ नीर बह्यो।।
नैन खोल गुरु रूप निहारे, तब गद्गद कंठ भयो
गोद उठाये श्री मनरंग मस्तक हाथ दियो।।
कहे जन सिंगा धन महिमा गुरु की
मोहे भव जल पार किया।।

भावार्थ: सिंगाजी गाते हैं, हे मेरे गुरु, मेरा जन्म वृथा ही चला गया। मैंने मुँह से राम का नाम भी नहीं लिया। बालपन खोया, किशोरपन खोया तीसरी अवस्था युवाकाल में गुरु की शरण में गया। वन में रहकर गाय–भैंसें चराईं। माया रूपी जंगल में वास किया और संसार के माया जाल में फँसा रहा। ब्रह्मा और विष्णु के समान गुरु मिले हैं, आँखों से लगातार अश्रुधारा बह रही है। जब आँख खोलकर गुरु का रूप निहारा तो कंठ गद्गद हो गया। मुझे गुरु ने अपनी गोद में उठा लिया अर्थात् गुरु ने मुझे अपना लिया है और मेरे इस जीवन को ज्ञान–भक्ति से सँवारने की जिम्मेदारी ले ली है, मेरे मस्तक पर आशीष का हाथ रख दिया है। उनका शक्तिपात मुझपर हो गया है। सिंगाजी लोगों से कहते हैं, कि गुरु की महिमा अपरम्पार है, गुरु ने मुझे मोह–माया के भवसागर से पार करवा दिया है।

सिंगाजी के प्रभाव से गुरु का महत्व प्रकट करने वाले अनेकों लोकभजन भी प्रचलन में आ गए। ये भजन गुरु से प्राप्त ज्ञान के द्वारा ब्रह्म की सत्यता को प्रकट करते हैं। ऐसा ही एक भजन है–

गुरु बिनऽ ज्ञान नी होयऽ रेऽ साधोऽ
गुरु बिनऽ ज्ञान नी होयऽ
बिन बीज की काया नी होयऽ रेऽ
बिना काया की माया
निरगुण बिरहम हो न्यारो रे साधो
बिना जीव को जग साझे
सगुण बिरहम होय न्यारो रे साधो
बिन गुरु ज्ञान न होयऽ
राम कृष्ण सिंगा जगगुरु
सगुण बिरहम बलिहारो साधो
गुरु बिन ज्ञान न होयऽ

भावार्थ: इस लोकगीत में रास्ता दिखाया गया है, कि बिना गुरु के ज्ञान नहीं मिलता है। गुरु ही ज्ञान के स्रोत हैं। बिना बीज के काया या वृक्ष नहीं बनता, बिना काया के माया नहीं होतीय् ब्रह्म तो निराकार है निरगुण है, से कैसे पहचानें। ब्रह्म न्यारा है अर्थात् ब्रह्म की महिमा अपरम्पार है, हम बिना गुरु के ब्रह्म के रहस्य को नहीं समझ सकते हैं। सगुण ब्रह्म भी न्यारा होता है। बिना गुरु के ज्ञान नहीं हो सकता है अर्थात् गुरु की कृपा के बिना विद्या और अविद्या के बीच का भेद नहीं जान सकते हैं।

राम, कृष्ण और सिंगाजी सगुण ब्रह्म हैं. उनकी बलिहारी है। वे हमारे सगुण गुरु भी हैं। वे जगद्गुरु हैं। गुरु की कृपा से ही हम माया के बन्धन से छूट सकते हैं। माया से छूटने का मार्ग गुरु ही दिखा सकते हैं। वही ज्ञान दे सकते हैं।

गुरु महिमा अनन्त है। लोक अनन्त की गहराई को और इसके विस्तार को समझ नहीं पाता है। लोक निर्मल मना है और वह जानना चाहता है कि हमारा गुरु कैसा है? लोक चाहता है कि हम गुरु को साक्षात् देखें। निरगुण या निराकार ब्रह्म के बारे में जानना हमारी समझ से परे है।

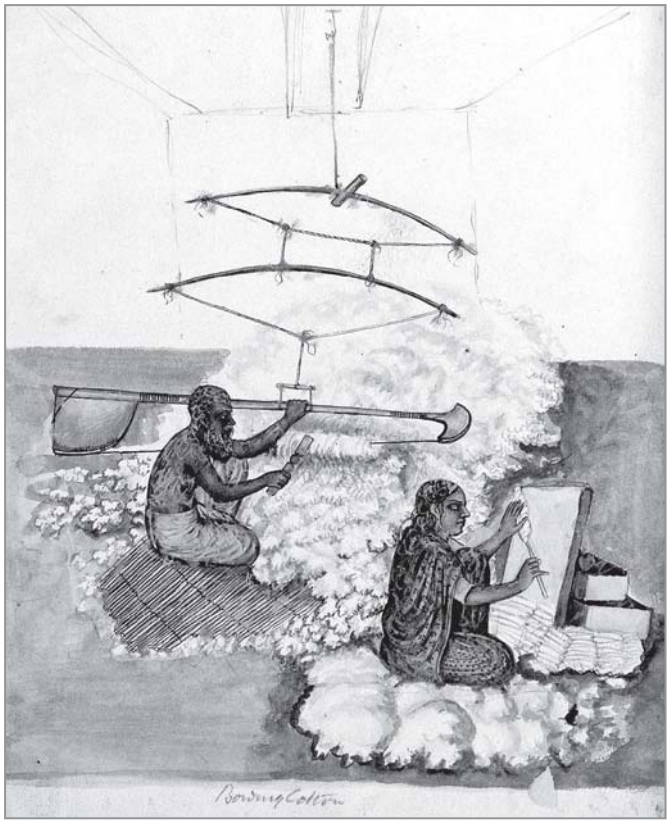

लोक तो गुरु से साक्षात वाचा करना चाहता है, गुरु को साक्षात देखना चाहता है।

लोकगीत – लोक भजन

ज्ञान गुरु सुणता जाजो जीऽ
सत् गुरु सुणता जाजो जीऽ
अरज म्हारी सुणता जाजोजी
सासरिया री वातऽ म्हारी
पीयर मऽ कयता जाजो जीऽ
पीयर पारी वातऽ सासरिया कयता जाजो जीऽ
तारा झड़ी चूँदड़ म्हारी पीयरीया सी दी
सासरिया मऽ ओढ़ी जोतऽ जेकी झिलमिल झिलमिल जीऽ
सत् गुरु देखता जाजो जीऽ चूँदड़ मह्री निरमळ राखो जीऽ
ज्ञान गुरु सुणता जाजो जीऽ
उजळा धवणाऽ चोखा राँध्याऽ
हरिया मूँग की दाळ नेह प्रेम को घीव नाख्यो
जीमता जातो जी, सत् गुरु चुगता जाजो जीऽ
बिना भगती की काया म्हारी थोथा बीज सुवायऽ
चरणऽ राखो नाथ मखऽ अमरित पेवाड़ता जाजो जीऽ
बीज तो पासता जाजो जीऽ

भावार्थ: हे मेरे सतगुरु महाराज, हे ज्ञान गुरु महाराज आप मेरी अरज सुनते जाइए। मेरे ससुराल की बात मेरे पीयर में कहते जाइए। मेरे पीयर की बात ससुराल में कहते जाईए जी। तारो से जड़ी चूँदड़ मुझे मेरे पीयर से दी गई थी। इस चूँदड़ को मैंने ससुराल में ओढ़ी। इस चूँदड़ की झिलमिल-झिलमिल जोत है, आप मेरी चूँदड़ को निरमल करते जाइए। हे गुरु, मैंने धवल चोखा (सफ़ेद) चावल और हरिया मूँग की दाल का भोजन बनाया है। उसमें निर्मल प्रेम रूपी घीव (घी) डाला है। आप आइए और जीम लीजिए (भोजन कर लीजिए)। हे गुरु, इस भोजन में से सगुण हिस्सा ले लीजिए। मेरी यह काया भक्ति बिना थोथे बीज की जैसी है। आप अपने चरणों में रखकर अमरित (अमृत) पान करवा दीजिए। हे सत् गुरु मेरे थोथे बीज को पुष्ट करते जाइये जी। हे सद्गुरु मेरे अभक्ति के दुर्गुणों को दूर कर अपनी शरण में ले लीजिए।

गुरु-शिष्य और परब्रह्म को सरलता से समझाने वाला एक और गीत है-

उड़ी जायऽ हंसऽ अकेलो
सदा रे जिनगी को मेळो...
पारिब्रह्म अकेलो
एकऽ झाड़ पऽ दुई पखेरू बठ्या
कूणऽ गुरुऽ नऽ कूणऽ चेलो...
पारि ब्रह्म अकेलो
ब्रह्म नऽ सिरजी जगतऽ की माया
कूणऽ गुरुऽ नऽ कूणऽ चेलो
पारि ब्रह्म अकेळो
चलतऽ मुसाफिर घुळलो सो उड़्यो
गुरु ज्ञान बिन भटकऽ झमेलोऽ
पारि ब्रह्म अकेलो

भावार्थ: जीव रूपी हंस अकेला धरती पर आता है और अकेला ही उड़ जाता है। यह जीवजगत मेला है। संसार परब्रह्म की ही रचना है परन्तु परब्रह्म भी अकेला ही है। वृक्ष रूपी संसार पर एक जैसे ही दो पक्षी बैठे हैं, पर कैसे जान पायें कौन गुरु है और कौन चेला (शिष्य) है। यह तो गुरुकृपा से ही मिलात है। ब्रह्म ने ही जगत रचा है, फिर भी जगत को माया कहा गया है। प्रत्येक जीव में ब्रह्म का वास है, फिर भी ब्रह्म तो अकेला ही है। मनुष्य चलता है तो धूल की तरह उड़ जाता है। गुरु द्वारा दिए गए ज्ञान के बिना वह दिशाहीन उड़ता रहता है। माया में जीव भटकता फिरता है। गुरु का ज्ञान ही यह शिक्षा दे सकता है कि ब्रह्म एक है, ब्रह्म अनेकानेक में है फिर ही ब्रह्म अकेला ही है।

एक ओर जहाँ सिंगाजी दैनिक जीवन के उदाहरणों द्वारा सरल लोक को निर्गुण भक्ति की प्रारंभिक शिक्षा दे रहे हैं, वहीं साधना क्रम में आगे बढ़ चुके साधकों को अगले स्तर का मार्ग दर्शन भी देते हैं।

साधनाक्रम में आगे बढ़े साधकों को सोऽहम्, त्रिकुटी, त्रिवेणी, अनहद बाजे आदि तंत्र शास्त्र के शब्दों वाले पदों के माध्यम से रास्ता दिखाते हैं।

संत सिंगा के पद स्वानुभूत प्रेरित हैं। खेती-माटी से निर्गुण भक्ति की शिक्षा देने वाले सिंगाजी की रचनाओं में उपनिषदों के ज्ञान की छवि भी है। यह तथ्य महत्वपूर्ण इसलिए है, कि सिंगा की औपचारिक शिक्षा नहीं हुई थी। मान्यता है, कि उनके गुरु मनरंगीर स्वामी के शक्तिपात् के प्रभाव से ही उनमें ज्ञान का अंकुर प्रस्फुटित हुआ और पल्लवित हुआ। सिंगाजी का एक और भजन है-

निर्गुण ब्रह्म है न्यारा, कोई समझो समझण-हारा
खोजतऽ ब्रह्म जलम सिराणा, मुनिजन पार न पाया,
खोजतऽ खोजतऽ शिवजी थाके वो ऐसा अपरम्पारा ।
शेष सहस्त्र मुख रटे निरन्तर, रैन दिवस एक सारा,
ऋषि मुनि ओ सिद्ध चौरासी, और तैंतिस कोटि पचिहारा ।
त्रिकुटी महल मेंऽ अनहद बाजे, होत शब्द झनकारा,
सुकमणि सेज शून्य मऽ झूले, ओ सोहम् पुरुष हमारा।
वेद कहे और कहे निर्वाणी, श्रोता करो विचारा,
काम, क्रोध, मद, मत्सर त्यागो, झूटा जगत पसारा।
एक बूँद की रचना सारी, जाका सकल पसारा,
सिंगाजी नऽ भर नजरां देख्या, ओ ही गुरु हमारा।

भावार्थ: ब्रह्म निर्गुण है, अनुपम है,जिसमें ब्रह्म को समझने की बुद्धि है, वही निर्गुण ब्रह्म-परमात्मा को समझ सकता है। ब्रह्म खोजते-खोजते जन्म बीत गए; किन्तु मुनिजन भी ब्रह्म को नहीं जान सके। खोजते-खोजते शिव भी थक गए, ऐसी अपरम्पार महिमा है ब्रह्म की। शेष शैय्या पर लेटे हुए विष्णु भी दिन-रात जिनका नाम लेते रहते हैं, ऋषि-मुनि, चौरासी सिद्धों और तैंतीस कोटि देवता भी जिसका नाम लेते रहते हैं। त्रिकुटी महल में ऐसा नाद होता है, कि बिना वाद्य के झनकार सुनाई देती है। सुखमणि सेज पर शून्य में झूला डला है, वही सोऽहम् परब्रह्म है हमारा। वेद और निर्वाणी संत कहते हैं, कि हे सुनने वालो, 'माया का झूठा संसार सब जगह फैला है, काम, क्रोध, मद, मत्सर का त्याग कर दो'। सिर्फ़ एक बिन्दु से ही ऐसी रचना की है, कि उसमें सकल जगत फैला हुआ है। सिंगाजी ने इस भेद को ज्ञान चक्षु से जी भर कर देख लिया है। उन्हें परब्रह्म के सच्चे दर्शन हो गए हैं। वे कहते हैं, परब्रह्म ही हमारा गुरु है।

सिंगाजी निर्गुण भक्ति के तत्व लोगों को समझाने लगे और भक्त उनके साथ जुड़ते चले गए। उनकी बढ़ती प्रसिद्धि और निर्गुण भक्ति के प्रचार से कई महन्तों और आडम्बरी संन्यासियों ने सिंगाजी का विरोध करना और उनके प्रति दुष्प्रचार करना शुरू कर दिया। एक बार एक महन्त ने उनसे कहा, कि तुम साद (सिद्ध) हो, तो चमत्कार दिखाओ, तभी हम तुमको सच्चा भक्त मानेंगे और तुम्हें रामानन्द और कबीर के समान स्थान देंगे।

परचरी में कहा है, कि संत सिंगा ने यह उत्तर दिया -

कहै स्वामी मैं हूँ उनके पग की धूल, कहाँ श्री रामानन्द कहाँ कबीर
ये ही पटतरो मोही न दीजे, हउँ अनाथ मोपै एक ना सीजे।

भावार्थ: स्वामी (सिंगा) कहते हैं, अरे, कहाँ रामानन्द और कबीर और कहाँ मैं, मैं तो उनकी चरणधूली हूँ। मुझे रामानन्दजी और कबीर साहब की ये पदवी ना दीजिये, मैं तो एक अनाथ ग़रीब हूँ।

ऐसे ही एक बार उन्होंने कहा, कि नामदेव और कबीर की बात लोगों ने नहीं मानी और गोरखपंथ की बातों का तो लोगों ने मज़ाक भी उड़ाया था। फिर मुझ ग़रीब की कौन सुनेगा, वो तो मेरे स्वामी ही हैं, जो निभा रहे हैं।

सिंगाजी ने गुरु को ही स्वामी का स्थान दिया, गुरु में ही राम और कृष्ण को पाया और गुरु और परब्रह्म को एक माना। गुरु की कृपा से ही सत्यमार्ग की शुरुआत संत कबीर और संत सिंगा की गुरु परम्परा सहित सभी ने बताई। उन्होंने कभी भी स्वयं गुरु बनने या अपने को गुरु घोषित करने की चेष्टा नहीं की वो तो अपने गुरु के सच्चे शिष्य थे और उनके बताए मार्ग पर परब्रह्म तक पहुँचने का सरल मार्ग लोगों को बताते थे। वस्तुत: उनके लिए गुरु और परब्रह्म एक ही हैं।

लेखिका - वरिष्ठ लोक संस्कृतिविद् हैं,
संपर्क : 13 समर्थ परिसर, ई-8 एक्स्टेन्शन, बावड़िया कला, पोस्ट ऑफिस त्रिलंगा, भोपाल-462039 मो.: 09424440377, 09819549984

पुस्तक - समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता एवं समसामयिक इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है। साथ ही समीक्षा दो पृष्ठों से अधिक की नहीं होना चाहिए। **- संपादक**

आलेख

आज अधिक प्रासंगिक हैं कबीर

-डॉ. सतीश चतुर्वेदी 'शाकुन्तल'

संतों की वाणी हिंदी साहित्य की शाश्वत निधि है। न केवल उनकी वाणी बल्कि उनकी जीवनचर्या की प्रासंगिकता सर्वकालिक एवं सार्वभौमिक है। उनका साहित्य लोकमंगल एवं शाश्वत जीवन मूल्यों से ओतप्रोत है। भक्ति काल हिंदी साहित्य के इतिहास में स्वर्ण युग से अभिहित किया जाता है। 'इस काल में संतों की साधना केवल वैयक्तिक और एकांतिक साधना नहीं थी । वह समाज को दृष्टि में रखकर चलती थी। समदृष्टि, भेदभाव का नाश और एकता का प्रचार इस साधना के आवश्यक अंग थे। संतों के लिए ब्राह्मण और अब्राह्मण और हिंदू -मुसलमान सब बराबर थे। मुसलमानों के प्रवेश ने हिंदू समाज के लिए कई समस्याएं उत्पन्न कर दी थीं। उनके आक्रमण से बहुत पहले ही हिंदू समाज संगठन छिन्न भिन्न होने लगा था (डॉ. जय किशन प्रसाद खंडेलवाल) प्रत्येक कवि अपने समय की देन होता है। वह अपने समय की परिस्थितियों के मध्य क्रिया और प्रतिक्रिया करता है एवं प्रश्नों के समाधान तलाशता है। संत कबीर के समय की' सामाजिक परिस्थितियां वर्णाश्रम धर्म के कारण धीरे-धीरे विच्छिन्न हो रही थी। ब्राह्मण और शूद्रों में मनोमालिन्य बढ़ रहा था। इसी के साथ मुसलमान शासकों के शासन में मुसलमानों की महत् ग्रंथि बढ़ रही थी जिससे हिंदू और मुसलमानों में दिनों दिन विद्वेष बढ़ रहा था। जाति का आधार प्रत्येक स्थल में कर्मकांड बनता जा रहा था और बाहरी वेश और आचार की विविधा ही सामाजिक स्तर का मूल्यांकन कर रही थी (डॉ धीरेंद्र वर्मा हिंदी साहित्य कोश भाग 2)

कबीर एक संत थे और संत शब्द का प्रयोग केवल उन आदर्श महापुरुषों के लिए किया जाता है जो पूर्णत: आत्मनिष्ठ होने के साथ-साथ समाज में रहते हुए निस्वार्थ भाव से विश्व कल्याण में प्रवृत्त रहा करते हैं। उनकी दृष्टि में परमात्मा तत्व और जीव तत्व में मूल अंतर नहीं होता। ऐसे ही संत थे कबीर जिनकी साधना सहज साधना थी। उन्हें किसी मंदिर-मस्जिद में जाने की या व्रत उपवास करने की आवश्यकता कभी नहीं पड़ी इसलिए वे स्वयं स्वीकार करते हैं-

करत विचार मनहिं मन उपजी, ना कहीं गया न आया।
कहै कबीर संसा सब छूटा, राम रतन धन पाया।।

कबीर का आविर्भावभाव ऐसे समय में हुआ था जब स्वामी रामानंद के नेतृत्व में राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक क्रांति अपने चरम पर थी। उनके समय की सामाजिक परिस्थितियों के विषय में डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- 'कबीर दास ऐसे ही मिलन बिंदु पर खड़े थे जहां से एक और हिंदुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व; जहां एक और ज्ञान निकल जाता है दूसरी ओर अशिक्षा; जहां एक और योग मार्ग निकल जाता है दूसरी ओर भक्ति मार्ग ; जहां से एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है तो दूसरी ओर सगुण साधना; उसी प्रशस्त चौराहे पर वे खड़े थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दिशा से गए हुए मार्गों के दोष - गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे। यह कबीर दास का भगवद्दत्त सौभाग्य था। उन्होंने इसका खूब प्रयोग भी किया।' इस सब के मध्य कबीर की बेचैनी चरम पर पहुंचती है, लेकिन वह शांत भाव से सब का समाधान एक प्रेम में पाते हैं और वह समन्वयवादी दृष्टिकोण रखते हुए सबको निकट लाने का प्रयास करते हैं। इसका योजक तत्व है प्रेम। वासना नहीं, सात्विक प्रेम। वे लिखते हैं -

पोथी पढ़ पढ़ जुग मुआ, पंडित भया न कोइ।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होइ।।

संत कबीर गृहस्थ योगी थे। उन्होंने अपने गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए लोक धर्म को अपनाया और सामाजिक कुरीतियों, पाखंडों, अंधविश्वासों का डटकर विरोध किया। उनकी व्यष्टि में समष्टि समाई हुई है। आज भी न सिर्फ देश में बल्कि वैश्विक स्तर पर संप्रदायवाद मुखर है जिसके कारण मानव मानव में संकीर्णता एवं वैमनस्य बढ़ रहा है। इसके

कारण जनता में संवेदनहीनता होने से भय व्याप्त है। अत: कबीर जितने प्रासंगिक उस समय थे, आज भी उतने ही हैं। बल्कि मैं कहूं तो उससे अधिक हैं। आज भूमंडलीकरण के दौर में जब बाजारवाद व्याप्त है, बाजार हमारे घरों में घुस आया है। सारे रिश्तों में लेनदेन प्रवेश कर गया है, स्वार्थ परता चरम पर है। रिश्ते नीरस हो रहे हैं । ऐसे में कबीर की याद आती है। इस संसार की बाजरू प्रवृत्ति की अनुभूति उन्हें उसी समय हो गई थी। इसलिए वह एक समाधान देते हैं आज वै तो वैर है मित्रता में छल हो रहे हैं अत: वे सावधान करते हैं –

कबिरा खड़ा बजार में, मांगे सब की खैर।
ना काहू से दोस्ती ,ना काहू से बैर।।

कबीर का व्यक्तित्व – कृतित्व दोनों समन्वयवादी हैं। वे हिंदू होते हुए भी हिंदू नहीं थे, मुसलमान होते हुए भी मुसलमान नहीं थे। वह सारे मतवादों से परिचित थे इसलिए परिस्थितियों ने उन्हें विशुद्ध मानवतावादी बना दिया था। आज जिस तरह समाज सुधारक समाज सेवा कर प्रमाण पत्र लेते हैं संत कबीर को समाज सेवा के लिए ऐसे किसी प्रमाण पत्र की आवश्यकता नहीं थी । वे दर्शन में जीते थे, प्रदर्शन में नहीं। वह तो सामाजिक विषमता से दुखी थे इसलिए उन्होंने सब प्रकार से समाज में समरसता लाने का सच्चा प्रयास किया। उन्होंने सर्वप्रथम समाज में व्याप्त पाखंड और बाह्याचारों को उखाड़ फेंकने के लिए विद्रोह का स्वर ऊंचा किया और कहा –

हम घर जाला आपना,लिया मुराड़ा हाथ ।
अब घर जालों तास का जो चले हमारे साथ ।।

वह सबसे पहले जातिगत समानता के अभिलाषी हैं और एक सामान्य भक्ति मार्ग की स्थापना करते हैं । कहते हैं –

जाति-पांति पूछे नहीं कोई। हरि को भजै सो हरि कौ होई।।

आज हमारे समाज में भ्रष्टाचार और झूठ का बोलबाला है। यह सामाजिक क्षेत्र में भी है और पूजा पाठ में भी। मोबाइल ने तो झूठ को सहज व्यवहार में ला दिया है ,लेकिन जिस समाज से सत्य लुप्तप्राय हो जाता है वह समाज विनाश के कगार पर पहुंच जाता है, । अत: आवश्यकता है कबीर के इस कथन की–

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय सांच है ताके हृदय आप।।

आज भी हमारा समाज अनेक बुराइयों में जकड़ा हुआ है। हिंसा, अज्ञान, असत्य और भ्रम में पड़ी मानव जाति आज भटक ही नहीं रही है बल्कि सिसक रही है। ऐसे में संत कबीर का सर्व धर्म समभाव का संदेश ही जीवन में शांति ला सकता है । मानव मानव को पास ला सकता है ; क्योंकि उन्होंने उस समय यह कहा था –हिंदू तुरक की एक राह है ,सतगुरु यहै बताई। जबकि इन दोनों के मध्य आज भी वही दूरियां हैं, वे संसार के मानवों को सीधा संदेश देते हैं कि यदि जगत एक है ,तो जगदीश भी एक ही होगा। उसे अलग–अलग नाम से स्थान भेद एवं भाषा भेद के अनुसार पुकारा जाना अलग बात है, लेकिन माना जाना अलग बात। जिस तरह एक वस्तु को भिन्न–भिन्न भाषाओं में भिन्न नामों से पुकारते हैं, इसी तरह ईश्वर एक है लेकिन उसके नाम अनेक हैं –

अल्ला राम करीमा केशव हरि हजरत नाम धराया।
दुइ जगदीश कहां से आए कहु कौनें भरमाया।।

यह बात कबीर ने सर्वप्रथम तार्किक आधार पर सिद्ध की। वे शरीर शुद्धि से अधिक मानसिक निर्माण पर जोर देते हैं। इसलिए बालों का मूंड़ना, उन्हें सजाना संवारना निरर्थक है जब तक मन निर्मल नहीं है। वे हाथ की माला को डालकर मन की माला फेरने की बात करते हैं। आज विषयों और विकारों में ग्रस्त समाज में मनुष्य मनुष्य से मिलता है ,तो लगता ही नहीं है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से मिल रहा है। इन संकीर्णताओं ने मनुष्य से उसका मनुष्यत्व दूर कर दिया है । उसकी अपनी पहचान छिन गयी है, । वे प्रत्येक जीव में एक ही परमात्मा को देखते हैं। तुलसी के ' सियाराम मय सब जग जानी की' भांति सबको जीवन जीने का अधिकार प्रदान करने की बात करते हैं। और किसी भी प्रकार की हिंसा के विरोधी हैं। अभी हाल में उपन्यासकार नियाज अहमद खान ने अपनी पुस्तक में यह सिद्ध किया है कि ग्लोबल वार्मिंग के लिए मांसाहार भी उतना ही जिम्मेदार है जितना के कार्बन डाइऑक्साइड । संत कबीर भी किसी भी प्रकार की हिंसा के विरोधी है और खुलकर कहते हैं–

बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल।
जे नर बकरी खात हैं तिनको कौन हवाल।।

इसके साथ–साथ समाज में धनाढ्य वर्ग सदैव से 'मेरा पेट हाऊ, मैं न दूं काऊ' की मानसिकता में जीता है। जिसके कारण समाज में संघर्ष और हिंसा की स्थिति पैदा होती है । वहीं संतोष का महत्व स्थापित करते हुए संत कबीर कहते हैं–

रुखा सूखा खाइ के, ठंडा पानी पीव।
देख पराई चूपड़ी मत ललचावे जीव।।

आज हमारा समाज विज्ञापनों में जी रहा है । उसकी साड़ी मेरी साड़ी से सफेद कैसे यह तुलनाएं उसे बेचैन किये रहती हैं। यदि संत कबीर की बात लोगों के जीवन मे अंशत: भी उतर जाए तो न्यायालयों में चलने वाले तमाम झगड़े समाप्त हो जाएं। आज मनुष्य की इच्छाएं अनंत हैं इसीलिए उसकी उम्र कम हो रही है । संत कबीर 120 साल इस संसार के साक्षी रहे और स्वस्थ रहे। आज व्यक्ति सुविधाओं से ढका हुआ तो है, सुविधाओं से सुख तो प्राप्त कर रहा है, लेकिन बेचैन है भागम भाग से उसकी शक्ति क्षीण हो रही है इसलिए उनकी बात को अपनाने की आवश्यकता है। वह कहते हैं –

चाह गई चिंता मिटी ,मनुआं बेपरवाह।।
जाको कछू न चाहिए सो जग शाहंशाह, ।

सामाजिक दृष्टि से कबीर ने अपने समय के कुछ तथा कथित ब्राह्मणों की उच्चता और आध्यात्मिक शक्ति की पोल खोल दी थी । वे जन्मना नहीं, कर्मणा जाति मानते हैं। वह कहते हैं–

ऊंचे कुल का जनमिया, जो करनी ऊंच न होइ।
कनक कलश सुरै भर्या, साधू निंदै सोइ।।

आज अनेक ऊंचे परिवारों के कार्य बहुत निंदनीय हैं। युवा पीढ़ी नशे की गिरफ्त में है। जरा –जरा सी बात पर युवा आत्महत्या कर रहे हैं ,उन्हें जीवन का अर्थ ही नहीं मालूम। सबसे घनिष्ठ रिश्ता कहे जाने वाले पति–पत्नी में अनबन है, उनमें हिंसा हो रही है। उनका मानना है कि किसी को कार्य के आधार पर ऊंचा और नीचा कैसे कह सकते हैं। उन्होंने कहा कि सबके भीतर एक प्रकार का ही रक्त है ,सुख– दुख की अनुभूति एक है भूख प्यास एक ही प्रकार से लगती है फिर अंतर कैसे? आज हम देखते हैं एक बीमार व्यक्ति अस्पताल में मृत्यु से जूझ रहा होता है, तब एक अपरिचित व्यक्ति जो किसी अन्य जाति का होता है उसका ब्लड ग्रुप उससे मेल खाता है। वह रक्तदान करता है और उसके प्राण बचा लेता है। हमारा मानना है कि यह संसार जातियों और संप्रदायों में नहीं, केवल कुछ रक्त समूहों में बंटा हुआ है। आज हम जितने शिक्षित होते जा रहे हैं, उतने ही संवेदन शून्य होते जा रहे हैं। कबीर को किसी भी दृष्टि से देखें वह पहले मानवतावादी ठहरते हैं। उन्होंने धनी निर्धन के बीच में भी जो भेद देखा ,उससे वे आहत हुए। वह लिखते हैं जब समाज में एक धनी व्यक्ति निर्धन के घर जाता है तो वह उसे सम्मान सहित घर में बैठता है और जब वही निर्धन व्यक्ति धनी के घर जाता है तो वह उससे मुंह फेर लेता है जबकि आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करें तो दोनों एक ही हैं वस्तुएं अलग हैं। उन्होंने समाज की आर्थिक विषमता की ओर लोगों का ध्यान खींचा उनकी पीड़ा है––

जो निरधन सरधन कैं जाई।
आगे बैठा पीठ फिराई।।
जो सरधन निरधन कैं जाई।
दीया आदर लिया बुलाई।।

वे इस ऊंच–नीच के बीच में एक संदेश देते हैं कि आवश्यकता से अधिक धन का संग्रह पाप की ओर ले जाता है। आज अमीर और गरीब के बीच की खाई और बढ़ती जा रही है। अमीर और अमीर होते जा रहे हैं गरीब और गरीब । भौतिकता में फंसे देश में परिग्रहियों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। आवश्यकता से अधिक अनावश्यक वस्तुओं का अंबार घरों में लगता जा रहा है। तृष्णा की कोई सीमा नहीं। इसलिए संतोष के माध्यम से आनंद प्राप्ति के लिए कबीर कहते हैं–

साईं इतना दीजिए जामें कुटुम समाय।
मैं भी भूखा ना रहूं, साधु न भूखा जाय।।

संत कबीर समाज में छोटे और बड़े सभी को महत्व देते हैं । समाज सभी से मिलकर बनता है और उसमें रहने वाले सभी परस्परावलंबित होते हैं। उन्होंने सामाजिक समरसता के लिए नारी निंदा को बहुत बुरा बताया। वे एक ओर नारी के साथ निस्संग जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। उसे माया बताते हैं,तो वहीं पतिव्रता नारी को पूज्य मानते हैं। यह बात ऐसे समय में और भी प्रासंगिक हो जाती है जब दूरदर्शन के कुछ चैनलों पर ऐसे धारावाहिक दिखाएं जाते हैं जहां पुरुष एक पत्नीव्रत नहीं होता और पत्नी पतिव्रता नहीं। इसलिए परिवार टूट रहे हैं ,आपसी रिश्तों में विश्वास लगभग समाप्त हो गया है। यह अनैतिकता अपने पांव पसार रही है। जब से लिव इन रिलेशनशिप को मान्यता मिली है और इसके फेर में पड़ी अनेक बालिकाओं की हत्याएं हो रही हैं। ऐसे में कबीर की बात अनुकरणीय है। वह कहते हैं –

पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरूप।
पतिव्रता के रूप पर वारौं कोटि सरूप।।
नारी निंदा मत करो ,नारी नर की खान।
नारी से नर होत हैं, ध्रुव प्रह्लाद समान।।

वे निर्गुणोपासक होने के बाद भी भारतीयता में पगे हैं। उन्होंने इसमें भारतीय नारी की पावनता को भी स्थापित किया है। संत कबीर बड़े पर्यावरण चिंतक हैं। वे वृक्षों को काटने के विरोधी हैं। उन्होंने यह कहकर अपना विरोध जताया है कि जो लोग वृक्षों को काटकर मंदिर बनाते हैं, वे मानो धरती के रोम नोंच कर उनकी जगह निर्जीव पत्थर स्थापित करते हैं। आज भौतिकता के युग में एक और बहुत बड़ी समस्या है–– गुरु– शिष्य संबंध, जिसमें दिनों दिन दूरी बढ़ती जा रही है। शिष्यों में समर्पण नहीं है, तो निर्लोभी एवं चरित्र वान गुरु भी अत्यल्प हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी संकेत किया–

हरहिं शिष्य धन शोक न हरहीं।
सो गुरु घोर नरक महं परहीं।।

इसी गुरु शिष्य के पावन संबंध को लेकर अद्भुत शाश्वत बात संत कबीर ने लिखी है–

सिष को ऐसा चाहिए, गुरु को सरबस देय।
गुरु को ऐसा चाहिए, सिष का कछू न लेय।।

यह बात आज जब शिक्षा विक्रय का साधन होकर बड़ा व्यवसाय बन चुकीहै उस समय और अधिक प्रासंगिक है। उनके काव्य में दर्शन, भक्ति और समाज का त्रिकोण है। वे तीनों ही बिंदुओं का समन्वय करके चलते हैं और खरे उतरते हैं; क्योंकि वे लोकमंगल के साधक हैं।

लेखक : वरिष्ठ साहित्यकार एवं पूर्व प्राध्यापक है।
बी– 113, सिसोदिया कॉलोनी(शहीद पार्क के पास)
गुना, म.प्र. चलभाष 9425618652

■

आलेख

किस किस के कबीर

डॉ. प्रिया सूफी

किस कबीर की कथा कहूं ? जो भी पुस्तक उठाती हूं वहां लोग मिलते हैं, बातें मिलती हैं, झगड़े मिलते हैं, आपसी वाद – विवाद मिलते हैं पर कबीर नहीं मिलते। क्या करूं?

किसी को कबीर जी की जन्म कथा पर आपत्ति है, किसी को उनकी वाणी में मिलावट दिखती है, कोई सनातन की कबीर वाणी में घालमेल पर दुखी है, किसी को गोरख की प्रेरणा मिलती है। कोई परेशान है कि कबीर जी हिंदुओं से मुक्त करवा कर दलितों, कामगारों को मिलने चाहिए। किसी को कबीर जी काशी से जान बचा कर भागते दिखते हैं ताकि वह अपनी कथनी करनी को एक कर सकें।

क्या है क्या यह? क्या इसी कबीर को हम सदियों से जीवित रखे हैं और कहते हैं कि कबीर हैं कि मरते ही नहीं? कबीर के लिए यह संसार कैसा रहा : **सांच कहो तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना... ये जग काली कुतरी...! इससे भी परम अर्थ रहा : रहना नहीं देस बिराना है।**

यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है।
यह संसार काँटे की बाड़ी, उलझ-पुलझ मरि जाना है।
यह संसार झाड़ और झाँखर, आग लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है।

मन को उद्वेलित करने वाली पुस्तकें हैं कबीर पर केंद्रित सभी, आत्मा को आहत करने वाली। केवल एक दूसरे से अधिक स्वयं को बुद्धिमान सिद्ध करने की साज़िश। कबीर तो कहीं है ही नहीं। खोजने का नाटक सभी ने किया है, सोचते हैं इस तरह कबीर जी के नाम पर अपनी विद्वता की रोटी सेंक लेंगे। क्या सच में ऐसा संभव है ?

गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिए अंध।
महादुखी संसार में, आगे जम के बंध।।

कबीर जी की सहजता सरलता, कभी पहुंच पाएंगे वहां तक? सच तो यह है कि कबीर जी अगर कहीं इन तथाकथित विद्वानों की वाणी से अपने प्रति विचार सुन रहे होंगे तो मुस्कुरा कर निकल जायेंगे।

बेढ़ा दीन्हों खेत को, बेढ़ा खेतहि खाय।
तीन लोक संशय पड़ा, काहिं कहूं समुझाय।।

कितनी अजीब सी बात है कि विद्वानों के अनुसार कबीर जी की वाणी में सनातनियों ने अपनी रीतियां प्रक्षेपित कर दीं और उनका बंटाधार कर दिया।

और कबीर जी मुस्कुराते हुए कहते हैं:

मन ऐसो निरमल भया, जैसो गंगा नीर।
पाछे पाछे हरि फिरै, कहत कबीर कबीर।।

किसी ने कहा कबीर जी पर गोरख का प्रभाव है, कुछ बोले कबीर जी के ऐकेश्वर वाद पर मुसलमानों का प्रभाव है। और वाणी कहती है :

मन गोरख मन गोविंदौ, मन ही औघड़ होइ।
जे मन राखै जतन करि, तो आपै करता सोइ।।

कबीर जी पर सभी नई पुरानी पुस्तकों के अध्ययन के बाद भी मन कहीं रमा ही नहीं। दरअसल सभी विद्वानों के परस्पर विवाद और खंडन मंडन को देख पढ़ सुन कर मन खट्टा सा हो गया। सोचती हूं किनके पास मैं कबीर जी को खोजने निकली हूं। यह को लोग हैं जो कभी कबीर जी को जानना ही नहीं चाहते थे। इन्हें तो बस अपना ही अहं संतुष्ट करना है और कुछ नहीं, कुछ भी नहीं।

समाज में वह क्या नहीं, जो कबीर के विचार में नहीं आया हो? काव्य में कबीर एक मार्ग है, साखी है :

चतुराई हरि ना मिलै, ए बातां की बात।
एक निसप्रेही, निरधार का, गाहक गोपीनाथ।।
पष ले बूड़ी पृथमीं, झूठे कुल की लार।
अलष बिसार्यो भेष मैं, बूड़े काली धार।।

खुद को सबसे बड़ा बुरा कहना कोई कबीर से सीखे:

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय॥

कौन कहता है आसान है कबीर होना! आज भी सबसे कठिन है कबीर हो जाना। समाज झेलेगा ही नहीं। कबीर सबके थे लेकिन अगर बात कुप्रथाओं, विडंबनाओं और रूढ़ियों के विरोध की हो तो किसके नहीं! कबीर की कोई जाति नहीं, बताने जैसा था ही क्या और पूछकर करना ही क्या! संत होकर भी सुलझे, सच्चे गृहस्थ। पहुंचे हुए ज्ञानी लेकिन कहा कि अनपढ़ हूं। अपना पेशा कहां छोड़ा। सुबह से शाम तक काम में लगे रहते। पहले अपने समकालीन समाज और फिर ईश्वर के

लिए सोचते। कबीर आखिर किस मिट्टी के बने थे।

सच कहूं तो आज गुरु नानक देवजी बहुत याद आए। जब बेईं में तीन दिन तक आलोप रहने के बाद गुरु नानक देव जी बाहर आए तो उनके मुंह से एक ही शब्द निकला: इक ओंकार सत नाम। मतलब केवल ॐ ही सत्य है। और हमारा सिख समाज यह बताने पर तुला है कि ओंकारॐ नहीं है कुछ और है। उसी प्रकार गुरु गोबिंद सिंह जी जिन्होंने अपने पिता धर्म के लिए बलिदान कर दिए और अपनी वाणी से पहले कहा : प्रथम भगौती सिमरिए। अर्थ : सर्वप्रथम भगवती का सिमरन करो। और हमारे सिख विद्वान कितनी पुस्तकें लिख चुके हैं यह समझाने के लिए कि भगौती भगवती नहीं है कुछ और है।

अरे भाई, इतनी सी बात क्यों नहीं समझते कि मसी कागत छुओ नहीं हाथ, कहने वाले व्यक्ति को स्वयं हरि समस्त ज्ञान प्रदान कर देते हैं। जिन्हें अनहद नाद सहज उपलब्ध है :

दसवें द्वार तारी लागी, अलख पुरुष जाको ध्यान धरै।
काल कराल निकट नहिं आवै, काम क्रोध मद लोभ जरै।।
तुम किस कबीर की बात करते हो?

(लेखिका हिंदी और पंजाबी में नियमित लिखती हैं। अष्टछाप कवि नंददास की काव्यकला पर अद्वितीय शोध प्रबंध लिखा।)
सम्पर्क - गली न. 10, मकान न. 243, कमालपुर, होशियारपुर (पंजाब)

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

के सदस्य बने

मैं ..... कला समय पत्रिका का ..... एक वर्ष : 300/- रूपये, दो वर्ष : 600/- रूपये, चार वर्ष : 1000/- रूपये, आजीवन : 10000/- रूपये का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। पत्रिका का साधारण डाक शुल्क एवं रजिस्टर्ड शुल्क रूपये 150/- प्रतिवर्ष सहित कुल रूपये ..... ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर ..... दिनांक ..... संलग्न है।

नाम : .....

पता : .....

.....

पिन : ..... मो. : .....

हस्ताक्षर

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 150/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग

जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :

'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

- कृपया सदस्यता शुल्क 'कला समय' के नाम भेजें।
- सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद अगले अंक से पत्रिका भेजना प्रारम्भ की जावेगी।
- सदस्यता शुल्क निम्न पते पर भेजे:- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016

-प्रबंध संपादक

आलेख

कबीर का निर्गुण प्रभाव: निर्गुण मत का जागरण

डॉ. स्वाति मिश्रा

भक्ति हृदय की उर्वरा भूमि पर विकसित होती है और इसका पल्लवन करने की शक्ति सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश में होती है। भारतीय भक्ति काव्य में निर्गुण चिंतन भी ऐसी ही परिस्थितिजन्य चिंतन धारा का विकास है। भारत के सांस्कृतिक इतिहास का गहनता से अध्ययन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय समाज में भक्ति की स्निग्ध प्रेममयी धारा प्रवाहित करने का श्रेय रामानंद को है-' भक्ति उपजी द्रविड़ लाएं रामानंद प्रगट किया कबीर ने सात द्वीप नौ खंड'। इस भक्ति धारा में मानवता की एक चेतना थी जिसका क्रांतिकारी विकास संत कबीर में हुआ। यह आश्चर्य की बात है कि 'मसी कागज छुओ नहीं' कहने वाले फकीर संत आज बड़े-बड़े महाकवियों की कोटि में शामिल है एवं उनके समान सम्मानित है। ईश्वर को कण-कण में व्याप्त बता कर उन्होंने धार्मिक आडम्बरों का विरोध कर जनमानस के लिए ईश्वर प्राप्ति एवं भक्ति के मार्ग को प्रशस्त किया। उनका संपूर्ण जीवन राम नाम का जाप करते हुए शिव नगरी में बीता। कबीर की मृत्यु मगहर में हुई किंतु ईश्वर में सच्ची आस्था रखने वाले के लिए काशी और मगहर में कोई अंतर ना था। उनके लिए हर जगह ईश्वर का वास है, यही उनका संदेश था।

मध्यकालीन भारत में राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में हो रहे लगातार परिवर्तन एवं संकीर्ण धार्मिक विवादों के कारण भारतीय समाज में निर्गुण पंथ एक नई ऊर्जा, विश्वास एवं चेतना के साथ उदित हुआ। जब देव दर्शन एवं पूजन अस्पृश्य लोगों के लिए कठिन हो गए, तब निर्गुण पंथ ने आम जनता को सहारा दिया- 'इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को संभाल लिया जो नाथ पंथ के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्तिरस से शून्य पड़ता जा रहा था।' संत कबीर ने मानवता से परिपूर्ण एक ऐसे उदार निर्गुण पंथ का प्रवर्तन किया जिसमें जातिगत रूढ़िवादिता, धार्मिक आडंबर एवं पाखंड के लिए कोई स्थान न था। उन्होंने निर्गुण पंथ के माध्यम से सांप्रदायिक विद्वेष, जातिवाद, वर्ण-व्यवस्था का तर्क पूर्ण विरोध किया। उनकी सामाजिक अन्याय के प्रति विद्रोही भावना अत्यंत प्रखर थी। निर्गुण भक्ति की अलख जगाने वाला फकीर संत कबीर हिंदुओं के लिए वैष्णव-भक्ति, मुसलमानों के लिए पीर, सिखों के लिए भक्त कबीर, पंथियों के लिए अवतार, तो आधुनिक राष्ट्रवादियों के लिए एकता के हिमायती और हाशिए के लोगों के लिए प्रगतिशील विचारक, आधुनिक विचारकों के लिए मानव धर्म प्रवर्तक के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को विशेष विचारधारा से ग्रसिल होकर लिखने वाले सांचे को तोड़कर मध्यकाल के महत्वपूर्ण कवियों में स्थान दिया है। उनका कबीर संबंधी साहित्य अद्वितीय एवं मील का पत्थर है।

स्थान प्राय: निर्गुण का अर्थ गुण से हीन अथवा बेगुण होना लगाया जाता है किंतु वास्तव में निर्गुण से तात्पर्य ऐसी परम शक्ति से है जो सत, रज और तम गुणों से परे है। अत: निर्गुण का अर्थ ऐसी सर्वव्यापी परमसत्ता से है जिसे मंदिर एवं मस्जिद में बांधा नहीं जा सकता, जन्म लेना और मारना उसका काम नहीं है। किसी अत्याचारी का नाश करने हेतु उसे अवतार लेने की आवश्यकता नहीं है, यही निर्गुण ज्ञान का आधार है। निर्गुण का कोई रूप नहीं है उसका वर्णन करना कठिन है। इसका अनुभव केवल अनहद नाद को सुनकर किया जा सकता है, निर्गुण रहस्यवादी विचारधारा में परमात्मा को पति और आत्मा को दुल्हन माना गया है। निर्गुण राम परम तत्व हैं, माया को आत्मा से निकालकर ही सत्य का ज्ञान हो सकता है।

वास्तव में निर्गुण पंथ किसी विदेशी चिंतन का प्रभाव नहीं है वरन भारतीय आध्यात्मिक चिंतन का ही प्रति फलन है, जिसका मूल स्रोत उपनिषद है। यह परंपरा बौद्ध, सिद्धों, जैन कवियों और नाथ योगियों द्वारा आगे बढ़ी। डॉक्टर पितांबर दत्त बड़थ्वाल के शब्दों में 'भारतीय जीवन में संचार करने वाली आध्यात्मिक प्रवृत्ति की इस धारा के उद्गम अत्यंत प्राचीनता के कोहरे में छुपे हुए हैं युग युगांतर को पार करती यह धारा आबाध रूप से बहती चली आ रही है'?

परलोक की साधना में इहलोक की सार्थकता मानने की प्रवृत्ति ही निर्गुण पंथ के उद्गम का कारण है। मध्यकाल में मुसलमान राज्य स्थापित हो जाने पर भारतीय राजनीतिक व्यवस्था ने दो संस्कृतियों के वैचारिक संघर्ष को जन्म दिया। इस पंथ के उदय होने में राजनीतिक परिस्थितियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। दो अपरिचित संस्कृतियां आमने-सामने खड़ी थी एक अपनी सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त थी तो दूसरी राजनीतिक रूप से मजबूत हो चुकी थी। इस्लामी संस्कृति का उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार करना था ऐसी स्थिति में रामानंद के शिष्य कबीर ने '**हरि को भजे सो हरि को होई**' कहकर सबके लिए भक्ति का मार्ग खोल दिया। निर्गुण भक्ति में कबीर ने माया का त्याग, एकेश्वरवाद की स्थापना, जातिवाद का विरोध, लोभ का त्याग, सत्संग, आडंबरों का त्याग, नाम स्मरण जैसे सिद्धांतों को अपना मूलमंत्र बनाया।

भगवान बुद्ध के उपरांत शंकराचार्य ने सामाजिक क्षेत्र में नवीनता का संचार किया और उसके बाद कबीर ही ऐसे महापुरुष हुए हैं जिन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया एवं ईश्वर प्राप्ति को समस्त वर्गों के लिए सुलभ बनाया कबीर की ऐसी ही मानसिकता शताब्दियों उपरांत एक महान व्यक्तित्व महात्मा गांधी में दिखाई देती हैं। कबीर विषय में राजनाथ शर्मा लिखते हैं 'हिंदी साहित्य और हिंदू समाज में कबीर नवीन जागरण के अग्रदूत माने जाते हैं आज कबीर जनता के हृदय में व्यक्ति के रूप में नहीं प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित है'। कबीर ने निर्गुण राम को भजने का उपदेश दिया उन्होंने अत्यंत स्पष्ट रूप में कहा कि दशरथ सुत का बखान तो समस्त लोक करता है पर उनके नाम के मर्म को कोई नहीं समझता है। उनका मानना था कि ईश्वर पैदा नहीं होता और ना ही अवतार लेता है वह अगम अगोचर है और कण-कण में विद्यमान है। निर्गुण पंथ में यह माना गया है कि जीव ईश्वर का ही अंश है सभी जीव ईश्वर की संतान है इसलिए उनमें भेद नहीं किया जा सकता। मनुष्य संसार में आकर स्वयं को ईश्वर से अलग मानने लगता है और अपनी आत्मा को कलुषित कर लेता है इसकी शुद्धि के लिए राम नाम का जाप आवश्यक है। निर्गुण पंथ की यह मान्यता है कि माया ही सांसारिक बंधनों में आत्मा को बांधती है और जीव का परमेश्वर से मेल करने में बाधक बनती है कबीर ने इसी माया को महाठगनी कहा है। जीव माया से ग्रसित होता जाता है वह परमात्मा से दूर होता जाता है। निर्गुण पंथी यह मानते हैं कि आत्मा और परमात्मा का मिलन ही मोक्ष है आत्मा जो परम शुद्ध है वह ही मोक्ष को प्राप्त होती है। जब आत्मा रूपी दुल्हन का अविनाशी से यानि परमात्मा के साथ फेरा हो जाता है तो वह अमर तत्व को प्राप्त कर लेती है और प्रत्येक जीव का यही लक्ष्य होना चाहिए।

निचली जाति से आए संतों ने जो धार्मिक आंदोलन का सूत्रपात किया था उसके कुछ निश्चित सामाजिक अर्थ थे। हिंदू समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था का विरोध था और उस पर चोट करना ही निर्गुण पंक्तियों का एकमात्र लक्ष्य था। निर्गुण पंथ सामाजिक विद्रोह से उपजी चेतना का ही प्रतिरूप है कि कबीर ने इसी वर्ण व्यवस्था के विरोध में कार्य करने का प्रथम प्रयास किया।

मध्यकाल में कबीर का सामंती शक्ति के विरुद्ध खड़े होना एवं वर्ण व्यवस्था और सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाना कोई आसान कार्य नहीं था वह अपने संघर्ष की परिस्थितियों के बारे में सजक थे। चरम तन्मयता में बद्ध मृग जिस प्रकार वध की संभावना से तनिक भी विचलित नहीं होता वैसे ही जाति धर्म और गरीबी के आतंक से घिरे कबीर मनुष्य के लिए समग्र मुक्ति के स्वप्न को शब्द देते रहे। कबीर मानते थे कि प्रेम का मार्ग सरल नहीं है यहां तो वही जा सकते हैं जो अपना सब कुछ त्याग करने के लिए तैयार हों। शायद इस विश्वास के बल पर ही सिकंदर लोदी जैसे कट्टर से भी टक्कर ले सके। अन्तर्साक्ष्यों से यहां तक प्रमाण मिलता है कि संत स्वभाव कबीर को सिकंदर लोदी ने हाथी के पैरों के नीचे कुचलवाया और जंजीरों में बांधकर गंगा में डाल दिया था।

कबीर ने काल्पनिक तौर पर या अनुमानत: कोई बात नहीं कही है। वे सत्य और वास्तविक तथ्यों को ही अपने वचनों में कहते थे। वह पूर्ण रूप से मानवता की स्थापना के लिए संकल्पित थे कपट पाखंड के घोर विरोधी थे। उनकी क्रांति बाहरी विप्लव ना होकर आंतरिक थी उनकी विचारधारा को समझने के लिए रविंद्रनाथ टैगोर की पंक्तियां उल्लेखनीय है ' मानव आत्मा जब विश्वात्मा से तादात्म्य कर लेती है तब मनुष्य सच्चे अर्थों में मानव धर्मी हो जाता है किंतु धर्म अनिवार्यत: मानवता को केंद्र में रखकर चलता है वह मनुष्य को उदार बनाता है'।

कबीर ने इस्लाम के एकेश्वरवाद का प्रभाव अवश्य ग्रहण किया है किंतु वे शंकराचार्य के अद्वैत मत के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। वे मानते हैं कि माया को दूर कर सत्य का दर्शन परमात्मा का ही दर्शन है। कबीर की कथनी और करनी में कोई अंतर नहीं है। उन्होंने कभी भी साधना के लिए गृहस्थ जीवन को त्यागने का उपदेश नहीं दिया है, उन्होंने सीधे सरल हृदय को ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बताया है।

वर्तमान समय में जिस हिंदू मुस्लिम एकता की विचारधारा जिस प्रबलता से वेगवती है उसे युग दृष्टा की भांति तत्कालीन समाज में अपनी प्रखर अभिव्यक्ति के साथ कबीर ने प्रस्तुत किया। कबीर ने परमात्मा के प्रति सच्ची भक्ति और शुद्ध भावनाओं के साथ मानवतावाद का प्रचार किया। कबीर का धर्म केवल प्राणी मात्र के साथ शुद्ध व्यवहार पर आधारित था। वह उस मानव धर्म को श्रेष्ठ मानते थे जिसमें सभी धर्म की श्रेष्ठ बातों का मिश्रण था। मन, वचन एवं कर्म के संतुलन पर उनका अटल विश्वास था। परमात्मा की सर्वव्यापकता के महत्व को स्वीकार करते हुए कबीर ने पद दलित लोगों को अपने साथ निर्गुण पंथ में शामिल किया।

समाज में समता मूलक भावना का प्रवर्तन तो रामानंद ने किया जो की जाति से ब्राह्मण थे किन्तु कबीर ने इस परंपरा को आगे बढ़ाने का कार्य किया जो कि जाति से जुलाहा थे। उन्होंने समकालीन समाज में क्रांतिकारी रूप से परिवर्तन लाने का महत्वपूर्ण प्रयास किया। इसी कारण उन्हें 'क्रांतिकारी कवि' भी कहा जाता है। परवर्ती काल में मुक्तिबोध, निराला, नागार्जुन जैसे महान कवियों को कबीर से निरंतर प्रेरणा प्राप्त होती रही । ग्रियर्सन ने भी कबीर के विषय में कहा था कि कबीर के सिद्धांत सेंट जॉन की कविताओं से मेल खाते हैं। गुरु ग्रंथ साहिब में भी कबीर के पदों को विशेष स्थान दिया गया है जिसमें 225 पद और 243 साखियाँ संग्रहित है।

गंभीरता से विचार किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर के सिद्धांतों को अपना कर ही मनुष्य सच्चा मानव धर्म स्थापित कर सकता है। अनेकानेक धर्म और जातियों के धागों से बना यह देश कबीर की चदरिया है। इसे वे अपनी वंश परंपरा में सौंपते हुए मानो हर किसी को कह रहे हो कि इसका एक भी धागा टूट न पाए इसमें जरा भी दाग न लगे, इसे मैला होने से बचाना है। कबीर की प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है जितनी भक्ति काल में थी क्योंकि समाज में समरस्ता चिरकालीन होनी चाहिए। हिंदी साहित्य के इतिहास में कबीर की स्थिति विलक्षण है उनकी विचारधारा कि अनुगूंज सदियों तक हिंदी साहित्य के पटल पर बनी रहेगी और आने वाले समय में भी साहित्यकारों के लिए कबीर पथ प्रदर्शक के रूप में हमेशा विद्यमान रहेंगे।

मो. 7047200231
e-mail - drswatimishravwyy@gmail.com

लक्ष्मीनारायण पयोधि की संत कबीरदास पर कविताएँ

लक्ष्मीनारायण पयोधि

23 मार्च 1957 को जन्मे पयोधि की साहित्य-साधना उनके मूल निवास-क्षेत्र बस्तर के भोपालपटनम् से आरंभ हुई। 'सोमारू' और 'लमझना' जैसी चर्चित काव्यकृतियों सहित 21 काव्य संकलन, 02 काव्यनाटक, कथा-संग्रह,बाल साहित्य एवं जनजातीय जीवन-संस्कृति और भाषाओं आदि पर कुल 56 पुस्तकें शामिल हैं। वे लोकप्रिय मासिक बाल पत्रिका 'समझ झरोखा' के संपादक और जनजातीय संस्कृति और भाषाओं के अध्येता के रूप में प्रतिष्ठित रहे हैं।

सम्पर्क: ए-1, लोटस, स्प्रिंग वैली, कटारा हिल्स, बाग़मुग़ालिया, भोपाल - 462043 (म.प्र.)

मो.: 8319163206

रेखांकन : अशोक अंजुम

ओ मेरे कबीर मन

(एक)

उलझा ताना-बाना
बनी नहीं चादर
उधेड़बुन में ही
फिसलता गया वक्त

न भूल सका स्वाद
मोह, लोभ, अहंकार की
करता रहा जुगाली
मदोन्मत्त
छलता हुआ ख़ुद को
घटता गया क्रमशः

हासिल मुट्ठीभर रुई
धुनने और बुनने को
कैसा जतन किया तूने
जीवनभर
ओ मेरे कबीर मन!

(दो)

बचा नहीं पाया थोड़ी ईर्ष्या
थोड़ा क्रोध,ज़रा-सी उदासी
न लालच,न दुःख,न दहशत

बचा नहीं पाया कुछ
कि खुले हाथों बाँट सकूँ दुनिया को
बची थोड़ी इच्छाएँ भी नहीं
कि जी सकूँ मौज की ज़िन्दगी

बची तो बस,थोड़ी करुणा
थोड़ा प्रेम और ज़रा-सी संवेदना
ये सब मगर...
दुनिया के लिये किस काम के
ओ मेरे कबीर मन?

(तीन)

सुन-सुनकर स्तुति
उफनता रहा भीतर पुलक का समंदर
गुमान से भरा-भरा मन
रोमांच से लबालब
उड़ता रहा आकाश में
गुनता नक्षत्रों की बातें
धरती का तो स्पर्श तक विस्मृत
अजब इन्द्रजाल...

मैं भटकता रहा
सुहाने भ्रममेघों पर सवार
अहंकार विमूढ़
ताउम्र
व्याज स्तुति को समझता स्तवन
ओ मेरे कबीर मन!

(चार)

अपने ही भीतर हम
करते रोज़ कितनी यात्राएँ

दुर्गम पगडण्डियों पर
बियाबानों के एकांत संगीत में
डूबते उतराते औंचक
भटक जाते राह भूल
जूझते मन के दुर्दांत अँधेरों से
अपने ही भीतर हम
करते रोज़ कितनी यात्राएँ

रास्ता काटती बिल्लियों-सी ढीठ नदियाँ
अड़ जाते कठिन प्रश्नों की तरह
अबूझ पर्वत-शिखर
आतंकित करतीं तिलस्मी
गुफ़ाओं-सी
अजनबी दृश्यावलियाँ
यात्राएँ भीतर की अजब...
भयावह...

मंज़िल का भ्रम उपजाते पड़ाव
और गुमान से पागल होते हम
ओ मेरे कबीर मन!

(पाँच)

घोंघा नहीं
मुझे बनना था
कठोर आवरण वाला शंख
जिसके अंतर में निरंतर
गूँजता शब्द ओउमकार

मुझे बनना था शंख
जिसके नाद से
टूट जाती देवताओं की नींद
हुंकार से जिसकी
हो जाता युद्धघोष
छिड़ जाता महासमर
सत्य के पक्ष में

अपने ही खोल में निस्पंद
घोंघा नहीं
मुझे बनना था शंख
कि बची रहे पृथ्वी की संवेदना
और रहे उसकी आत्मा अनाहत
ओ मेरे कबीर मन!

■

कविताएँ

डॉ. श्लेष गौतम की कबीर पर कविताएँ

डॉ. श्लेष गौतम

जन्म- प्रयागराज (इलाहाबाद) उप्र, रचनाएँ- चाँद सुलगता है (काव्य संग्रह), आज के दोहो में भारत की तस्वीर, (दोहा संग्रह भारत के प्रमुख दोहाकारों के साथ), सुनहरा कल (मुक्तक संग्रह), नई सदी को पढ़ो कबीरा (काव्य संग्रह), राम तुम्हारा नाम (काव्य संग्रह), सम्मान पुरस्कार-काव्य संग्रह चाँद सुलगता के लिए उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की ओर से डॉ. हरिवंशराय बच्चन युवा गीतकार सम्मान सहित अन्य कई सम्मान प्राप्त मो. 9415324228, 7905909598

नई सदी को पढ़ो कबीरा

उठो कबीरा बढ़ो कबीरा
नई सदी को पढ़ो कबीरा
शब्दों को हथियार बनाकर
फिर दुनिया से लड़ो कबीरा

जात को तोड़ो पात को तोड़ो
तोड़ने वाली बात को तोड़ो
बिगड़ रहे हालात को तोड़ो
पागल हुई जमात को तोड़ो
दिन को तोड़ो रात को तोड़ो
घात और प्रतिघात को तोड़ो
अकड़ भरी औकात को तोड़ो
झूठ की हर बारात को तोड़ो

पेट पे पड़ती लात को तोड़ो
सच्चाई की मात को तोड़ो

गीत गजल कविताई वाला
थप्पड़ मुंह पर जड़ों कबीरा

आग लगाती आग बुझा दो
नए प्रेम की आग लगा दो
जहर उगाते बाग हटा दो
फूल नए रंगों के खिला दो
दूर करे जो सुर वो भुला दो
एक करे जो राग कढ़ा दो
प्रेम पगी साखियां सुना दो
फिर सोतों के भाग जगा दो
बांट रही दीवार गिरा दो
नई नई तस्वीर बना दो

चौकन्ने दिन-रात रहो तुम
तोड़ने वाले तड़ो कबीरा

ढाई आखर गाना होगा
साखी सबद सुनाना होगा
तुम को फिर से आना होगा
फिर सबको समझाना होगा

गुस्सा खूब चबाना होगा
खुद को भी बहलाना होगा
देख-देख शरमाना होगा
कई बार पछताना होगा
घर-घर आना-जाना होगा
सबका साथ निभाना होगा

सच्चाई का चाबुक लेकर
झूठ की छाती चढ़ो कबीरा

दिशा बदल दो दशा बदल दो
मारकाट का नशा बदल दो
चुभती है जो हवा बदल दो
मर्ज पकड़ लो दवा बदल दो
खानपान घर पता बदल दो
चूल्हा-चक्की तवा बदल दो
ताल बदल दो कुआं बदल दो
ये सियार, हुआं हुआं बदल दो
हाथ बदल दो दुआ बदल दो
अब तक जो भी हुआ बदल दो

नई-नई माटी से फिर से
इस दुनिया को गढ़ो कबीरा

ढाई आखर की बुनियादें

पढे-लिखों की चालाकी से फूट गई तकदीर
ढाई आखर की बुनियादें हिलने लगीं कबीर

मिलजुल कर कैसे रहना है दुनिया भूल गई है
तुमने देखा नहीं मदरसा ये स्कूल गई है

खून की होली तोड़ रही है रिश्तों की जंजीर

तुम परवाह कहाँ करते थे कितना बोल गए थे
दाढ़ी चोटी जंतर-मंतर सबकुछ खोल गए थे

अक्षर-अक्षर सत्य तुम्हारा मिलती नहीं नज़ीर

कड़वाहट फूलों में फैली हवा हुई जहरीली
सुबह शाम खा खा अफीम ये पीढ़ी हुई नशीली

रंगों से रंगत गायब है चुभने लगा अबीर

घुटने टेक रहे हैं वंशज चाटुकार हैं छिछले हैं
शब्दाडंबर ओढ पहनकर कलम बेचने निकले हैं

रोम-रोम है गिरवी इनका मुर्दा हुआ जमीर

झूठ को सच कहती है दुनिया सच को झूठ बताती
पाप की गठरी सिर पर लदे गंगा रोज नहाती

साफ हुआ मन कभी नहीं बस घुलता रहा शरीर

■

दोहे और गीत

यश मालवीय के कबीरदास पर दोहे

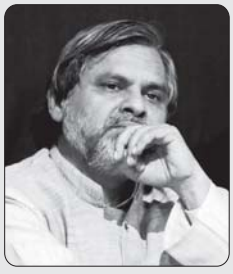

यश मालवीय

जन्म 18 जुलाई 1962, प्रकाशित: कहो सदाशिव, उड़ान से पहले, एक चिड़िया अलगनी पर एक मन में, बुद्ध मुस्कुराए, एक आग आदिम, कुछ बोलो चिड़िया, रोशनी देती बीड़ियाँ, नींद कागज की तरह (सभी नवगीत संग्रह), कृतियां चिनगारी के बीज (दोहा संग्रह), इण्टरनेट पर लड्डू, कृपया लाइन में आएँ, सर्वर डाउन है (सभी व्यंग संग्रह), रेनी डे, ताकधिनाधिन (दोनों बालगीत संग्रह), पुरस्कार : दो बार उ.प्र. हिन्दी संस्थान का निराला सम्मान, सम्पर्क: 'रामेश्वरम, ए 111 मेंहदौरी कॉलोनी, इलाहबाद-211004, मोबाइल - 6307557229

पंडे डरे कबीर से, उठी धर्म की हाट
बिक जाने से बच गया, गंगा जी का घाट ।।

दुख को भुज भर भेटता, सुख को मारे लात
कबिरा दिनभर जागता, रोए सारी रात ।।

हर सवाल का आपको, मिलता सधा जवाब
कबिरा पूरा आदमी, कबिरा सरल क़िताब।।

मन्दिर मस्जिद में कहाँ, किस ईश्वर की खोज
भीतर की सच्चाइयाँ, कबिरा बोले रोज़ ।।

कथा कबीरा की सुनो, जिसका आदि न अंत
हारे पंडे मौलवी, हारे संत महंत ।।

सिर्फ़ आदमी धर्म है, सिर्फ़ आदमी जात
सोच समझकर ऑकिये, कबिरा की औकात ।।

कात रहा है वक्त को, बीते छ: सौ साल
कलम हाथ में ले खड़ा, खींचे सबकी खाल ।।

मगहर जाकर शान से, तोड़ी अपनी साँस
कबिरा रहा निकालता, सबके मन की फाँस ।।

हिन्दू मुस्लिम क्यों लड़ें, क्यों हो रहे तबाह
कबिरा तो दिखला गया, सीधी सच्ची राह ।।

वही तिलमिलाया बहुत, जो जितना सम्भ्रांत
कबिरा ने खुलकर कहा, धर्मों का वृत्तान्त ।।

देह बिहारी सी हुई, मन हो गया कबीर
हमने समझी इस तरह, कठिन समय की पीर ।।

भागे कठमुल्ले सभी, मना रहे हैं खैर
कबिरा ने सब को कहा, क्या अपना क्या गैर ।।

बातों में ही फूल है, बातों में शमशीर
बहुत देर से पर चलो, समझे गए कबीर ।।

सूने में सुन लीजिए, कोई रहा कराह
रचनाकार कबीर का, गूंजे अंतर्दाह।।

कठिन गरीबी भुखमरी, धुँआ घुटन संत्रास
समझी दास कबीर ने, युग की गहरी प्यास ।।

मसि कागद छूआ नहीं, छुआ हमारा प्रान
इसीलिए तो रख सका, कबिरा सबका मान।।

कबिरा के तन पर पड़े, रामानन्द के पाँव
गंगा के तट पर जगी, तारों वाली छाँव ।।

कबिरा को सोने न दे, अपना अपढ समाज
पढ़े लिखे से मौलवी, पढ़ते सिर्फ़ नमाज़ ।।

दोहे तोड़ें रूढ़ि की, तनी हुई सी रीढ़
कबिरा है तनहा बहुत,, आसपास है भीड़ ।।

छिनभर में है लाँघता, हर खाई दुर्लंध्य
है कबीर के होंठ पर, करुणा ममता व्यंग्य ।।

मिला जियावनहार जब, क्या धारा क्या तीर
कभी मरेगा ही नहीं, अपना दास कबीर।।

कबिरा की साखी कहाँ, कहाँ फ़ैज़ के शेर
राजनीति साहित्य की, मचा रही अंधेर ।।

चलती चक्की देखकर, नहीं जागती पीर
दर्द जुलाहे का कहे, कोई नहीं कबीर ।।

कबिरा ने ऊँचा किया, झुका हुआ हर माथ
रहा आग से खेलता, लिए लुकाठी हाथ ।।

गंगा जी की सीढ़ियाँ, धार और मझधार
बसा हर कहीं देखिए, कबिरा का संसार ।।

सबको सँग लेकर चलें, अपने दास कबीर
कहीं लहरतारा कहीं, अपना लहुराबीर।।

तानाबाना बुन रहा, है भरनी के संग
हर प्रतीक को खोलता, कबिरा का सत्संग।।

है फ़क़ीर तो क्या हुआ, अपना दास कबीर
हमने तो देखा नहीं, उससे बड़ा अमीर ।।

यश मालवीय के कबीर पर तीन गीत

(1)

चलो चलें कुछ पढ़ें कबीरा

चलो चलें कुछ पढ़ें कबीरा
फिर से आने वाले कल को
रचें कबीरा, गढ़ें कबीरा

उमस बढ़ी है बादल बनकर
देर तलक धरती पर बरसें
प्यास और पानी सब अपने
फिर काहे को तलझें-तरसें

चलो चलें कुछ पढ़ें कबीरा
एक नसैनी आसमान तक
पहुँचाएँ फिर चढ़ें कबीरा

ढाई आखर की क़िताब पर
दीमक का कब्ज़ा हो काहे
दौड़ दिमाग़ों की पहचानें
सुन लें दिल की गाहे-गाहे

चलो चलें कुछ पढ़ें कबीरा
बने- बनाए फ्रेम तोड़कर
चित्र नए कुछ मढ़ें कबीरा

समय आ गया है, लिखनी है
फिर से नए समय की साखी
उड़ना चाह रहा, उड़ लेगा
झुलसे हुए पंख का पाखी

चलो चलें कुछ पढें कबीरा
अपनों से लड़ने से पहले
अपने से भी लड़ें कबीरा

बिना छुए छाले साँसों के
नर्म धूप का मरहम रख दें
जो कर रहा कलंकित सच को
उसको भर मुँह गाली बक दें
चलो चलें कुछ पढ़ें कबीरा
मुड़-मुड़ रहे देखते पीछे
अब तो आगे बढ़ें कबीरा।

रेखांकन : अशोक अंजुम

(2)

फिर दुख गए कबीर

किसी पुरानी चोट सरीखे
फिर दुख गए कबीर
शायद कुछ कहने वाले थे
पर रुक गए कबीर

रहे घूमते अपना मगहर
साथ लिए बस्ती में
नहीं कह सके आख़िर कैसे
जो भी आया जी में

चुकने की तो उम्र नहीं थी
क्यों चुक गए कबीर?

लपटें लगीं जलाने साखी
जलते सबद रमैनी
मसि कागद तो छुआ नहीं
अब ठोकें सुरती खैनी

छोड़ लुकाठी, भय के क़दमों
पर झुक गए कबीर

अपनों से ही हारे
काशी के पंडों से हारे
लगे समझने मुल्ला जी भी
दीन हीन बेचारे

ईसा जैसे नफ़रत की
कीलों ठुक गए कबीर

(3)

कबिरा ने तो चादर बीनी

हम सीखे बस नुक्ताचीनी
कबिरा ने तो चादर बीनी
झीनी झीनी झीनी झीनी

हमने अपनी परम्परा का
रक्त पिया बस हंसे ठठाए
कक्षाओं से साखी सबद
रमैनी वाले पाठ पढ़ाए

मसि कागद ना छूने वाले
मुहावरे ने आंखें छीनी
हम सीखे बस नुक्ताचीनी

कबिरा जैसा कौन पढ़ा है
कबिरा सा क्या कोई ज्ञानी
ऐसे ही वो नहीं कह रहा
बरसे कम्बल, भीगे पानी

निरगुन की आंखों में अब भी
खुशबू सी है भीनी भीनी
हम सीखे बस नुक्ताचीनी

घट घट अन्तर्घट को खुलकर
दुलहिन मंगलाचार सुनावे
देखो वो आगाह कर रहा
माया महाठगिनि बहकावे

कड़ुआ है समाज, क्योंकर हो
बोली बानी में गुड़ चीनी
हम सीखे बस नुक्ताचीनी।

अंशु मालवीय की कबीर पर कविता

रेखांकन : अशोक अंजुम

आती है कबिरा को हांसी

हम तो हैं मगहर के वासी
तुम्हें मुबारक बारानासी

भ्रम की टाटी सबै उड़ानी
मठ में मिलता मरों को पानी
जीवित को केवल आश्वासन
महिमा अमित न जाय बखानी

सतगुरु कारण बुद्धि पियासी
कलम भई सत्ता की दासी

जिस चौरे पर कबिरा बैठा
पंडा उस पर बैठ अकड़ता
सिल लौठी पर वेद को पीसे
आइंस्टाइन भी उससे डरता

चुटियाधारी फ़िज़िक्स पढ़ाए
आती है कबिरा को हांसी।

दोहे, गीत, ग़ज़ल

अशोक अंजुम के विविध काव्य रंग और कबीर

अशोक 'अंजुम'

जन्म : 15 दिसम्बर, 1966, गाँव : दवथला, जि.अलीगढ़ (उ.प्र.)
शिक्षा : एम.ए., बी.एड.
सर्जन : 31 मौलिक और 40 संपादित पुस्तकें, विभिन्न भाषाओं में रचनाओं का अनुवाद, काव्य मंचों पर व्यंग्य कवि, गीतकार, ग़ज़लकार, दोहाकार, के रूप में चर्चित, 'अभिनव प्रयास' त्रैमासिक पत्रिका का संपादन, प्रकाशन।
सम्पर्क: स्ट्रीट 2, चंद्र विहार कॉलोनी (नगला डालचंद) क्वार्सी बायपास, अलीगढ़-202002
मो.: 9258779744

कबिरा खड़ा उदास

होठों पर मधुमास सजा है
अन्तस में सन्त्रास,
यहाँ-वहाँ हर ओर जगत् में
मात्र विरोधाभास!

जो हैं अपने
सभी बगल में
छुरी दबाये हैं,
अक्सर
विश्वासों से हमने
धोखे खाये हैं,
वह उतना ही दूर निकलता
जितना लगता पास!

सच्चाई के
माथे पर हैं
बूँद पसीने की,
कौन जानता

रेखांकन : अशोक अंजुम

कला यहाँ पर
मरने-जीने की?
मृग-मरीचिका बनकर उभरे
खुशियों का अहसास।

इच्छाएँ हैं ढेर
हमारी
चादर छोटी है,
पड़े-पड़े हम
रहें कोसते
किस्मत खोटी है,
दो पाटन के बीच पिसें सब
कबिरा खड़ा उदास!

यहाँ नैनसुख
आँखों पर हैं
पट्टी को बाँधे
जिनके ऊपर
भार सत्य का
झुके वही काँधे
बरसे कंबल, भीगे पानी
लगे नदी को प्यास!

दोहे - द्वारे खड़े कबीर

फटी चदरिया ओढ़कर, द्वारे खड़े कबीर ।
बोले तन को देख मत लख मन की तासीर ।।

दो कौड़ी के मोल पर, बिकता है ईमान ।
कबिरा अब बाजार में, सस्ता है इंसान ।।

कबिरा खड़ा बजार में माँगे अपनी खैर ।
कौन डंसे, कब, क्या ख़बर, यूं न किसी से बैर ।।

पैसा जिनके पास है पंडित हैं वे लोग ।
हे कबीर ! वे मूर्ख हैं, जिन्हें प्रेम का रोग ।।

संत मौलवी खोलकर मजहब की दूकान ।
अब कबीर बाजार में, पाते हैं सम्मान ।।
मजहब ने जब बाँग दी भीड़ हुई उद्दण्ड।
कबिरा कैसे अब बुझे, भड़की आग प्रचण्ड ।।

हुआ कबीरा प्रेम से पैसा अब बलवान ।
सब कुछ बाजारू लगे, पैसे में वो जान ॥

सच्चाई के पाँव में जुल्मों की जंजीर ।
अंजुम फिर भी ना रुकें गाते फिरें कबीर ।।

मानवता की देह पर, देख-देख कर घाव।
हम कबीर जीते रहे, सारी उम्र तनाव।।

कौन कहे इस दौर में, आम जनों की पीर।
या तो अब हम कह रहे, या कह गए कबीर।।

ग़ज़ल - कबीरा!

बड़ा बुरा है हाल कबीरा
छेड़ो फिर सुरताल कबीरा ।

सच के हिस्से में हैं फाँके
झूठ उड़ाए माल कबीरा ।

हम मछली, हर ओर मछेरे
फैलाए हैं जाल कबीरा ।

बचपन से हक माँग-माँगकर
पके हमारे बाल कबीरा ।

मीठी वाणी बोल रहे थे
खिंची हमारी खाल कबीरा ।

कोवे, बेढंगी बतलाते
अब हंसों की चाल कबीरा ।

मजहब की दूकान खोलकर
वे हैं मालामाल कबीरा ।

उत्तर डरे-डरे फिरते हैं
अकड़े खड़े सवाल कबीरा ।

■

दोहे / (साखी)

संत कबीरदास की वाणी

रेखांकन : अशोक अंजुम

राम-रहीमा एक है

अलख इलाही एक है, नाम घराया दोय।
कहै कबीर दो नाम सुनि, भरम परौ मति कोय ॥

राम रहीमा एक है, नाम धराया दोय।
कहै कबीर दो नाम सुनि, भरम परौ मति कोय ॥

काशी काबा एक है, एकै राम रहीम।
मैदा इक पकवान बहु, बैठि कबीरा जीम ॥

एक वस्तु के नाम बहु, लीजै वस्तु पहिचान।
नाम पक्ष नहिं कीजिए, सार तत्व ले जान ॥

राम कबीरा एक है, दूजा कबहु न होय।
अंतर टाटी कपट की, ताते दीखे दोय ॥

नगर चैन तब जानिये, जब एकै राजा होय।
याहि दुराजी राज में, सुखी न देखा कोय ॥

तुरक मसीते देहरे हिन्दू, आप आप को ध्याय।
अलख पुरुष घट भीतरै, ताका पार न पाय ॥

कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।
नैनूँ रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ ॥

रंगहि ते रँग ऊपजै, सब रँग देखी एक।
कवन रँग है जीव को, ताकर करहु विवेक ॥

जब मैं था तब हरि नहिं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
कबिरा नगरी एक में, राजा दो न समाहिं ॥

सुर नर मुनिजन औलिया, ये सब बैले तीर।
अलह राम की गम नहीं, तहँ घर किया कबीर ॥

कबिरा दिल दरिया मिला, बैठा दरगह जाय।
जीव ब्रह्म मेला भया, अब कछु कहा न जाय ॥

हिल मिल खेला ब्रह्म सौं, अन्तर रही न रेख।
समझे का मत एक है, क्या पण्डित क्या शेख ॥

एक राम को जानिकै, दूजा देइ बहाय।
तीरथ व्रत जप तप नहीं, आतम तत्व समाय ॥

जाति न पूछौ साधु की

जाति न पूछौं साधु की, जो पूछौ तो ज्ञान।
मोल करो तरवार का, परा रहन दो म्यान ॥

गंग जमुन उर अंतरै, सहज सुंनि ल्यौ घाट।
तहाँ कबीरै मठ रच्या, मुनिजन जोवैं बाट ॥

सुर नर थाके मुनि जनाँ, जहाँ न कोई जाइ ।
मोटे भाग कबीर के, तहाँ रहे घर छाइ ॥

कबीर हरदी पीयरी, चूना ऊजल भाइ ।
राम सनेही यूँ मिले, दुन्यूँ बरन गँवाइ ॥

दैह धरे को दण्ड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि, अज्ञानी भुगते रोय ॥

तन कौं जोगी सब करें, मन कौं बिरला कोइ ।
सब सिधि सहजै पाइए, जे मन जोगी होइ ॥

भेद ज्ञान साबुन भया, सुमिरन निर्मल नीर ।
अंतर धोई आत्मा, धोया निर्गुन चीर ॥

कबिरा तेई पीर हैं, जो जानै पर पीर ।
जो पर पीर न जानि है, सो काफिर बेपीर ॥

ढाई आखर प्रेम का

पढ़ि-पढ़ि तो पत्थर भया, लिखि-लिखि भया जो ईंट।
कबिरा अन्तर प्रेम की, लगी न एकौ छींट ॥

पासा पकड़या प्रेम का, सारी किया शरीर ।
सतगुर दाँव बताइया, खेलै दास कबीर ॥

सतगुर हम सूँ रीझि करि, एक कह्या प्रसंग ।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग ॥

मन दीया जिन सब दिया, मन के संग शरीर ।
अब देवे को क्या रहा, यों कवि कहै कबीर ॥

बहुत दिनन की जोबती, बाट तुम्हारी राम ।
जिव तरसै तुझ मिलन कूँ, मनि नाहीं विश्राम ॥

कबीर हरि रस यौं पिया, बाकी रही न थाकि ।
पाका कलस कुंभार का, बहुरि न चढ़हि चाकि ॥

आपा मेट्या हरि मिलै, हरि मेट्या सब जाइ ।
अकथ कहानी प्रेम की, कह्या न को पत्याइ ॥

ऐसा कोई ना मिले, जासौं रहिये लाग ।
ई जग जरते देखिया, अपनी अपनी आग ॥

प्रेम न खेतों नींपजे, प्रेम न हाटि बिकाइ।
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ ॥

जैसी प्रीत कुटुम्ब सों, तैसी हरिसों होय।
दास कबीरा यों कहै, काज न बिगरे कोय ॥

पोथी पढ़ि-पढि जग मुआ, पंडित भया ना कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥

साखी आँखी ज्ञान की

सब काहू का लीजिए, साँचा शब्द निहार ।
पक्षपात न कीजिए, कहै कबीर बिचार ॥

कबिरा कलियुग कठिन है, साधु न मानै कोय ।
कामी, क्रोधी मसखरा, तिन को आदर होय ॥

बानी तो पानी भरै, चारू वेद मजूर ।
करनी तो गारा करै, साहब का घर दूर ॥

धरती-अंबर न हतो, कौन था पण्डित पास ।
कौन महूरत थापिया, चांद सूर आकास ॥

कबीर महल बनाइया, ज्ञान गिलावा दीन्ह ।
हरि देखन के कारने, शब्द झरोखा कीन्ह ॥

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ ।
बूँद समानी समंद में, सो कत हेरी जाइ ॥

मनिषा जनम दुर्लभ है, बहुरि न दूजी बार ।
पक्का फल जो गिरि पड़ा, बहुरि न लागै डार ॥

कबीर मन पंछी भया, बहुतक चढ्या अकास ।
उहाँ ही तैं गिरि पड़या, मन माया के पास ॥

सात समँद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ ।
धरती सब कागद करौं, तऊ हरि गुण लिख्या न जाइ॥

ऐसा कोई ना मिले, राम भगति का मीत ।
तन मन सौंपे मृग ज्यूँ, सुनै बधिक का गीत ॥

जेहि मरने से जग डरै, सो मेरे मन आनंद ।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानंद ॥

जब गुण कौ गाहक मिलै, तब गुण लाख बिकाई ।
जब गुण को गाहक नहीं, तब कौड़ी बदले जाइ ॥

रेखांकन : अशोक अंजुम

कस्तूरी कुंडलि बसे, मृग ढूँढै बन माहिं ।
ऐसे घटि-घटि राम हैं, दुनियाँ देखै नाहिं ॥

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोइ ।
आप ठगै सुख ऊपजै, और ठगै दुख होइ ॥

निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय ।
बिन पानी साबुन बिना, निरमल करै सुभाय ॥

कबिरा खेत किसान का मिरगन खाया झार ।
खेत बिचारा क्या करै, धनी करै नहिं बार ॥
माटी कहै कुम्हार सौं, तू क्या रूँदे मोय ।
एक दिन ऐसा होएगा, मैं रुँघूँगी तोय ॥

मरिये तो मरि जाइये, छूटि परै जंजार ।
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ-सौ बार।।

कामी का गुरु कामिनी, लोभी का गुरु दाम ।
कबिरा का गुरु संत है, संतन का गुरु राम ॥

कामी क्रोधी लालची इनते भक्ति न होय ।
भक्ति करै कोइ सूरमाँ, जाति बरन कुल खोय ॥
चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवा बेपरवाह ।
तिनको कछु न चाहिये, सब साहब पति साह ॥

जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप ।
जंहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ क्षमा तहँ आप ॥

पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहार ।
ताते यह चाकी भली, पीसि खाद्य संसार ॥

बोल तो अनमोल है, जो कोई जानै बोल ।
हिये तराजू तोलिके, तब मुख बाहर खोल ॥

औगुन को तो ना गहे, गुन ही को ले बीन ।
घट घट महकै मधुप ज्यौं, परमातम ले चीन ॥

घट समुद्र लखि न परै, उठै जो लहरि अपार ।
दिल दरिया समरथ बिना, कौन उतारै पार ॥

रैन समानी भानु में, भानु अकाशे माहिं ।
अकाश समाना शब्द में, शब्द परे कछु नाहिं ॥

कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि ।
मन न फिरावै आपनों, कहा फिरावै मोहि ॥

तीरथ गए द्वै जना, चित चंचल मन चोर ।
एकौ पाप न काटिया, मन दस लादे और ॥

मूरख को समुझावते, ज्ञान गाँठ का जाइ ।
कोयला होइ न ऊजरो नव मन साबुन लाइ ॥

राह बिचारी क्या करै, जो पन्थि न चले विचारि ।
आपन मारग छोड़ि के, फिरै उजारि उजारि ॥

सब ही ते लघुता भली, लघुता ते सब होय ।
जस द्वितीया कौ चन्द्रमा, शीश नाबै सब कोय ॥

हीरा तहाँ न खोलिए, जहँ हो खोटी हाट ।
सहज की गाँठी बाँधिये, लगिए अपनी बाट ॥

माला तौ कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं ।
मनुवा तौ चहुँदिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥

अच्छा दिन पाछें किया, हरिसों किया न हेत ।
अब पछिताये होत क्या, जब चिरिया चुग गयी खेत॥

हद छांडि बेहद गया, रहा निरन्तर होय ।
बेहद के मैदान में, रहा कबीरा सोय ॥

साखी आँखी ज्ञान की, समुझि देखु मन माहिं ।
बिन साखी संसार कौ, झगरा छूटत नाहिं ॥

हम वासी उस देश कौ

हम वासी उस देश कौ, जहाँ अविनाशी की आन ।
सुख-दुख कोइ ब्यापै नहीं, सब दिन एक समान ॥

हम वासी उस देश कौ, जहाँ बारा मास बिलास ।
प्रेम झरै बिलसैं कँवल, तेज पुंज परकास ॥

हम वासी उस देश कौ, जहँवाँ नहिं मास बसन्त ।
नीझर झरै महा अमी, भींजत है सब अंग ॥

हम वासी उस देश कौ, जहाँ जाति बरन कुल नाहिं ।
शब्द मिलावा होय रहा, देह मिलावा नाहिं ॥

हम वासी उस देश कौ, जहाँ गगनि घरनि दोऊ नाहिं ।
भँवरा बैठा पंख बिनु, देखा पलकों माहिं ॥

हम वासी उस देश कौ, जहाँ पार ब्रह्म का खेल ।
दीपक जरै अगम्य का, बिन बाती बिन तेल ॥

हम वासी उस देश कौ, जहाँ पार ब्रह्म का कूप ।
अविनाशी विनशै नहीं, आवै जाय सरूप ॥

कौन तुम्हारा नाम

कहाँ ते तुम जो आइया, कौन तुम्हारा ठाम ।
कौन तुम्हारी जाति है, कौन पुरुष कौ नाम ॥

अमर लोक ते आइया, सुख के सागर ठाम ।
जाति हमारी अजाति है, अमर पुरुष कौ नाम ॥

कौन तुम्हारी जाति है, कौन तुम्हारो नाम ।
कौन तुम्हारा इष्ट है, कौन तुम्हारा गाँव ॥

जाति हमारी आतमा, प्रान हमारा नाम ।
अलख हमारा इष्ट है, गगन हमारा ग्राम ॥

सन्तो ! सहज समाधि भली

सन्तो ! सहज समाधि भली ।
साँई ते मिलन भयो जा दिन तें, सुरत न अन्त चली ॥

आँख न मूँदूँ कान न रूँधू, काया कष्ट न धारूँ ।
खुले नैन मैं हँस-हँस देखूँ, सुन्दर रूप निहारूँ ॥

कहूँ सो नाम सुनूँ सो सुमिरन, जो कछु करूँ सो पूजा ।
गिरह-उद्यान एक सम देखूँ, भाव मिटाऊँ दूजा ॥

जहँ-जहँ जाऊँ सो परिकरमा, जो कछु करूँ सो सेवा ।
जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत, पूजूँ और न देवा ॥

शब्द निरन्तर मनुआ राता, मलिन बचन का त्यागी ।
उठत-बैठत कबहुँ न बिसरै, ऐसी तारी लागी ॥

कहैं कबीर यह उन्मुनि रहनी, सो परगट कर गाई ।
सुख-दुख के इक परे परम सुख, तेहि में रहा समाई ॥

मोकों कहाँ ढूँढे बन्दे

मोकों कहाँ ढूँढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में ।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे-कैलास में ॥

ना तो काउन क्रिया-कर्म में, नहीं जोग-बैराग में ।
ना मैं छगरी ना मैं भेंडी, ना मैं छुरी-गंडास में ॥

नहीं खाल में नहीं पूँछ में, ना हड्डी ना माँस में ।
मैं तो रहौं सहर के बाहर, मेरी पुरी मवास में ॥

खोजी होय तो तुरतै मिलि हौं, पल भर की तालास में ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सब साँसन की साँस में ॥

सो सब रूप तुम्हारा

जो खुदाय मसजीद बसतु है और मुलुक केहि केरा ।
तीरथ-मूरत राम निवासी बाहर करे को हेरा ।
पूरब दिसा हरी को बासा पच्छिम अलह मुकामा ।
दिल में खोज दिलहि में खोजौ इहैं करीमा-रामा ।
जेते औरत-मरद उपानी सो सब रूप तुम्हारा ।
कबीर पोंगरा अलह राम का सो गुरु पीर हमारा ।

सहज समाना घट-घट बोले

पंडित देखहु हृदय विचारी, को पुरुषा को नारी ।
सहज समाना घट घट बोले, बाके चरित अनूपा ।
वाको नाम काह कहि लीजे, न वाके वर्ण न रूपा ।
तैं मैं क्या करसी नर बौरे, क्या मेरा क्या तेरा ।
राम खुदाय शक्ति शिव एकै, कहुधौं काहि निहोरा ।
वेद पुरान कितेब कुराना, नाना भाँति बखाना ।

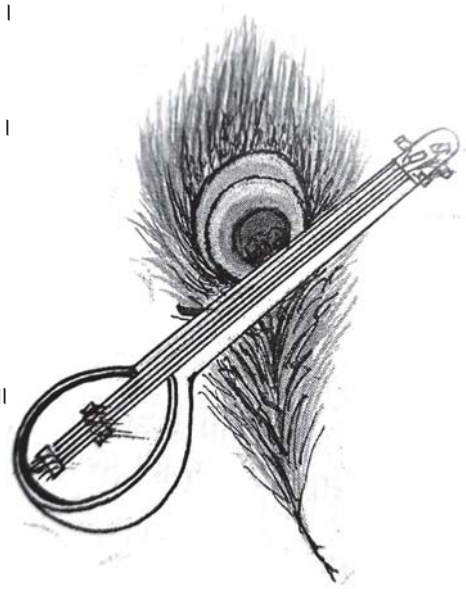

हिन्दू तुरुक जैनि औ योगी, ये कल काहु न जाना ।
छौ दर्शन में जो परवाना, तासु नाम मनमाना ।
कहहिं कबीर हमहीं पर बौरे, ई सब खलक सयाना ।

सन्तो ! देखत जग बौराना

सन्तो देखत जग बौराना !
साँच कहौ तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना ।
नेमी देखा धरमी देखा, प्रात करे अस्नाना ।
आतम मारि पषाणहिं पूजे, उनमें कछु न ज्ञाना ।
बहुतक देखा पीर औलिया, पढ़ें कितेब कुराना ।
के मुरीद तदबीर बतावैं, उनमें उहै जो ग्याना ।
आसन मारि डिम्भ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना ।
पीतर-पाथर पूजन लागे, तीरथ गर्भ भुलाना ।
टोपी पहिरे माला पहिरे, छाप तिलक अनुमाना ।
साखी शब्दै गावत भूले, आतम खबरि न जाना ।
हिन्दू कहैं मोहिं राम पियारा, तुरुक कहैं रहिमाना ।
आपुस में दोउ लरि-लरि मूये, मर्म न काहू जाना ।
घर-घर मन्तर देत फिरत हैं, महिमा के अभिमाना ।
गुरु सहित शिष्य सब बूड़े, अन्त काल पछिताना ।
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, ई सब भरम भुलाना ।
केतिक कहौं कहा नहिं माने, सहजे सहज समाना ।

स्रोत : मध्यप्रदेश जनसंपर्क संचालनालय

आलेख

भारतीय ज्ञान परम्परा की अविच्छिन्न धारा के मानक - लल्लेश्वरी और कबीर

डॉ. अद्वैतवादिनी कौल

नवम्बर 2023 में हमारे एक वाट्सेप ग्रुप में निम्नलिखित जिज्ञासा आई :

'कबीर की एक साखी है -

हरि घोड़ा ब्रह्मा कड़ी, वासक पीठ पलान।
चांद सूरज दोऊ पालड़ा, चढसी संत सुजान।।

1. क्या ये पंक्तियां शुद्ध हैं, यदि नहीं तो सही क्या है?

2. वासक पीठ से, और ब्रह्मा कड़ी से क्या तात्पर्य है?

3. इस साखी की व्याख्या क्या है?

कृपया विद्वतजन शंका समाधान करने की कृपा करें।'

जब मैंने इस टिप्पणी को पढा, तब तक एक उत्तर आया था, जो इस प्रकार था:

'पाठ तो शुद्ध है, थोड़ा-बहुत पाठांतर भी हो सकता है। वाच्यार्थ तो सीधे पकड़ में आ रहा है --- विष्णु घोड़ा हैं, ब्रह्मा लगाम (कड़ी) हैं, शेषनाग घोड़े की पीठ पर बिछाने वाला बिस्तर (पलान) है, चंद्रमा और सूर्य दो रकाबें (पालड़ा) हैं। कोई संत सुजान ही इस सवारी को कर सकता है। रहस्यवाद की दृष्टि से इसकी व्याख्या हेतु विस्तार में जाना होगा।'

कबीर की इस साखी को पढते ही मैं लल्लेश्वरी के वाखों का स्मरण कर रोमांचित हो उठी। कश्मीर की शैवयोगिनी लल्लेश्वरी के समय का निर्धारण 1317 से 1372 ईस्वी के बीच किया गया है। इनके निम्नलिखित वाखों में यही अभिव्यक्ति मिलती है। इन वाखों का हिन्दी अनुवाद व व्याख्या मेरा प्रयास है-

शिव् गुर् तॉय् केशव् पलनस
ब्रह्मा पायहर्यन् व्लस्यस्।
योगी योगकलि पर्ज़ान्यस्
कुस् देव् अश्ववार् प्यठ चेड्यस्।।

लल्लेश्वरी के द्वारा14वीं सदी में कश्मीरी भाषा में रचे इस मूल वाख का 18वीं सदी में कश्मीर के ही एकप्रसिद्ध शैव पण्डित राजानक भास्कर ने संस्कृत में यह अनुवाद किया-

शिवोऽश्वः केशवस्तस्य पर्याणमात्मभूस्तथा।
पादयन्त्रं तत्र योग्यः सादी क इति मे वद।।

कश्मीरी वाख का अनुवाद मैंने इस प्रकार किया है:

शिव अश्व और केशव पलान (काठी/जीन)
ब्रह्मा उल्लसित पायदान।
योगी योग-कला से पहचाने
कौन देव (इस) अश्व पर सवारी करे।।

यह वाख़ शैव दर्शन के आधारभूत तथ्यों पर विचार कर रहा है। इसके अनुसार त्रिदेव - ब्रह्मा, विष्णु और शिव, जो क्रमशः सृष्टि, स्थिति व संहार के देवताओं के रूप में जाने जाते हैं; वास्तव में ये परम तत्व के संवाहक एवं घटक हैं। उपनिषदों के अनुरूप इस तथ्य को लल्लेश्वरी ने एक सादृश्य के माध्यम से यहां समझाया है कि शिव (देवता के रूप में) घोडा है अर्थात् ज्ञानोदय का मार्ग है; विष्णु घोड़े की ज़ीन है अर्थात् ज्ञानोदय के मार्ग पर चलने का संकेत है; और ब्रह्मा उल्लसित पायदान हैं अर्थात् इस मार्ग पर निकल पडने की आतुरता। लेकिन एक योगी ही अपनी योग साधना की शक्ति से पहचानता है कि कौन इस घोड़े की सवारी कर सकता है।

अगले वाख में लल्लेश्वरी इसका विस्तार प्रस्तुत करतीं हैं-

अनाहत् खस्वरूप शून्यालय्
यस् नाव् ना वर्ण ना रुप ना गोत्र।
अहं निनाद बिन्द तय वोन्
सुय अश्ववार् प्यठ् च्यड्यस ।।

इस वाख का राजानक भास्कर कृत संस्कृत अनुवाद यह है-

अनाहतः खस्वरूपः शून्यस्थो विगतामयः।
अनामरूपवर्णोऽजो नादबिन्द्वात्मकोऽस्ति सः।।

मेरा हिन्दी अनुवाद :

अनाहत ख स्वरूप शून्यालय
जिसका न नाम वर्ण रूप न गोत्र।
अहम् -विमर्श निनाद और बिन्दु जिसको कहा
वहीं (देव इस) अश्व पर सवारी करे।।

यहाँ लल्लेश्वरी परम सत् (शिव) का वर्णन करते हुए कहतीं हैं कि वो अनाहत हैं अर्थात् ॐकार का नाद है जो अबाधित, अविरत और श्वाश्वत है; जो आकाश स्वरूप है अर्थात् सर्वव्यापी है; जिसका आलय (रहने का स्थान) शून्य अर्थात् जो दुर्बोध है; जिसका न कोई नाम, वर्ण, रूप अथवा गोत्र है अर्थात् जो दिक् - काल की सीमाओं से परे होने के कारण निर्गुण, निराकार है; स्वतः पूर्ण एवं पर्याप्त है। तो फिर उस परम सत् का स्वरूप कैसा है जो इस अश्व पर सवारी करता है। इस गूढ़ तथ्य को लल्लेश्वरी अगली पंक्ति में व्यक्त करतीं हैं कि जिसको अहं-विमर्श और नाद-बिन्दु

कहते हैं वही इस अश्व की सवारी करता है। क्योंकि वह (परमसत) स्थिर होने से अत्यन्त गूढ़ होने के कारण सामान्य अनुभव से अतीत तो है, परन्तु वह स्वयं प्रकाशरूप अहंविमर्श है जो क्रियाशील शक्ति के रूप में गतिशील है। इस प्रकार परमशिव और शक्ति का सामरस्य नित्य और निरन्तर है। ॐकार का आदि-नाद इस निरन्तरता में शक्ति का प्रतीक है और शिव का प्रतीक स्वप्रकाशमान बिन्दु है। यही सामरस्य कहलाता है। योगी को योग के बल से ॐकार का नाद अविरत सुनाई देता है। योगाभ्यास के गणीभूत होने पर ही उस योगी को सहस्रार-चक्र में परमसत् से एकाकार हो जाता है। सहस्रार-चक्र को ही शून्यालय भी कहते हैं जो शिव का स्थान है। लल्लेश्वरी कहतीं हैं कि शिव के रूप में ॐकार ही ब्रह्माण्डीय शक्तियों का आरोहण करता है और शिव के कारण ही जीवन-प्रक्रिया का कार्य चलता है।

कठोपनिषद् में यम नचिकेता को रथ का सादृश्य देते हुए कहते हैं -

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयां स्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।

- कठोपनिषद्-1.3.3-4

'इस शरीर को रथ जानो और आत्मा को (इस रथ में) सवार मानो। बुद्धि को सारथी और मन को लगाम जानो। इन्द्रियों को घोड़े कहा जाता है तथा इन्द्रियों के विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) को मार्ग कहते हैं। विचारशील मन और इन्द्रियों से युक्त इस आत्मा को कर्ता तथा सुख-दःख भोगने वाला कहते हैं।'

इस सादृश्य में मनुष्य का शरीर रथ है, घोड़े पाँच इन्द्रियाँ हैं और घोड़ों के मुख में पड़ी लगाम मन है; सारथी बुद्धि है और रथ में बैठे सवार शरीर में वास करने वाली आत्मा है। इन्द्रियाँ (घोड़े) अपनी रुचि के अनुरूप पदार्थों की कामना करती हैं। मन (लगाम) इन्द्रियों को मनमानी करने से रोकने में अभ्यस्त नहीं होता। बुद्धि (सारथी), मन (लगाम) के समक्ष आत्मसमर्पण कर देती है। इस प्रकार मायाबद्ध अवस्था में सम्मोहित आत्मा बुद्धि को उचित दिशा में चलने का निर्देश नहीं दे पाती है। अतः रथ को किस दिशा की ओर ले जाना है, इसका निर्धारण इन्द्रियाँ अपनी मनमानी के अनुसार करती हैं। आत्मा इन्द्रियों के सुखों का अनुभव परोक्ष रूप में करती है किन्तु ये इन्द्रियाँ उसे तृप्त नहीं कर पाती। इसी कारण से रथ के आसन पर बैठी आत्मा इस भौतिक संसार में अनन्त काल तक चक्कर लगाती रहती है। यदि आत्मा अपनी दिव्यता के बोध से जागृत हो जाती है और अपनी सक्रिय भूमिका निर्वाहन करने का निश्चय करती है तब वह बुद्धि को उचित दिशा की ओर ले जा सकती है। तब फिर रथ आत्मिक उत्थान की दिशा में दौड़ने लगेगा। ऐसी स्थिति में दिव्य आत्मा का प्रयोग तत्वों, इन्द्रियों, मन और बुद्धि को नियन्त्रित करने के लिए करना चाहिए, यही तात्पर्य है।

इस लेख के प्रारंभ में उद्धृत कबीर की साखी में भी इसी प्रकार के सादृश्य को वैष्णव मत के परिप्रेक्ष्य में दर्शाया गया है। संत कबीर मध्यकालीन भारत के रहस्यवादी कवि के रूप में प्रसिद्ध हुए हैं। वे ज्ञानमार्गी शाखा के महा संत थे। बताया जाता है कि उनके गुरु वैष्णवमत के प्रमुख संत रामानंद थे जिनको काशी में उस समय बहुत बडे विद्वान तथा महा पुरुष के रूप में जाना जाता था। उत्तर भारत में भक्ति का प्रचार करने का श्रेय रामानंद को ही जाता है। इन्होंने विष्णु के अवतार राम की भक्ति का प्रचार किया है। कहते हैं कि रामानंद कश्मीर भी गए थे और यहां उन्होंने हिन्दुओं के साहित्य और धर्म की पुनर्स्थापना कर दी थी।

रामानंद का समय 1300 ईस्वी से 1475 ईस्वी के बीच माना जाता है। संत कबीर का जन्म 1398 ईस्वी का, वहीं उनके निधन की तारीख 1518 ईस्वी बतायी जाती है।

उपरोक्त तीनों उद्धरण हमारे सामने विविधता में एकता को प्रस्तुत करने वाले अत्यन्त सुन्दर उद्धरण हैं। क्योंकि भारतीय ज्ञान परंपरा नित्य प्रवाहमान प्रक्रिया है और हमारे ऋषियों व सन्तों ने इस ज्ञान का बखान अपने- अपने अनुभवो के आधार पर प्रकट किया है। कहा ही गया है - **'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'!**

लेखिका - वरिष्ठ साहित्यकार हैं।

कला समय का बैंक खाता विवरण

1.	**खाता का नाम**	:	कला समय
2.	**खाता संख्या**	:	09321011000775 (चालू खाता)
3.	**बैंक शाखा**	:	पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)
4.	**आईएफएस कोड**	:	PUNB0093210

प्रबंध संपादक

आपका बहुमूल्य आर्थिक सहयोग पत्रिका के लिए संजीवनी होगा।

आलेख

काशी के कबीर और कबीर की काशी

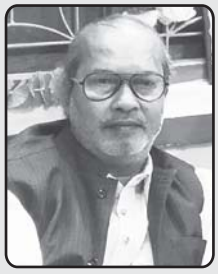

डॉ. कवीन्द्र नारायण श्रीवास्तव

चार दाग से न्यारे संत कबीर का काशी से जनम जनम और करम करम का रिश्ता है द्य संस्मरण के लिहाज से प्रमुख रूप से काशी के तीन स्थान उनके साथ जुड़े हुए हैं। करीब 626 साल पहले काशी के दशाश्वमेध गंगा घाट से बमुश्किल 05 किलोमीटर दूर लहरतारा क्षेत्र में स्थित एक जलाशय के पास नीरू और नीमा नाम के जुलाहा दंपत्ति को वह एक शिशु के रूप में मिले थे। उस समय लहरतारा का क्षेत्र एक निचाट और घना जंगल हुआ करता था। काशी का यह पहला स्थान है जो उनके साथ जुड़ा। यह भी एक और इत्तेफाक ही है कि अभी 19 जून को ही लहरतारा स्थित कबीर आश्रम में कबीर साहेब का 626वां प्राकट्य महोत्सव मनाया गया। आश्रम के धर्माधिकारी अर्धनाम साहेब ने बताया कि मान्यता के अनुसार 626 साल पहले तालाब में कमल के फूल पर शिशु कबीर, नीरू और नीमा को मिले थे। सन्त कबीर ने अपने वाणी में लिखा भी है' गगन मण्डल से उतरे सदुरु सत्य कबीर। जलज मांहि पौढ़न किये दोउ दीनन के पीर।। नवविवाहित नीरू और नीमा शिशु कबीर को लेकर अपने घर आ गए जो आज के कबीर चौरा क्षेत्र में ही था। यह दूसरा स्थान है जो कबीर से काशी में जुड़ा है यह भी एक महज संयोग है कि इस आलेख के लेखक का भी करीब 250 वर्ष पुराना निवास भी कबीर चौरा, में ही स्थित है और पड़ोसी कबीर के घर यानी मठ में अक्सर आना जाना होता है। जैसा कि आज के दौर में हो रहा है वैसे ही कबीर साहेब के भी घर में अक्सर मिल्कियत के माल्कियत को लेकर विवाद होता रहता है। कबीर का लालन पालन यहीं हुआ और जुलाहा कबीर का करघा भी यहीं स्थित है। कबीर की तमाम रचनाओं ने भी इसी जगह पर जन्म लिया था।

ऐसा कहा जाता है कि

पंचगंगा घाट वह तीसरा स्थान है जो एक आम लड़के का 'संत कबीर' बनने का साक्षी है। धार्मिक मान्यता के अनुसार पाँच नदियों का संगम स्थल पंचगंगा घाट पर गंगा ,जमुना , सरस्वती , किरणा और धूतपापा नदियों का एक दूसरे से मिलन होता है। यहाँ स्नान करने से पांचों नदियों में स्नान का पुण्य मिलता है। कबीर चौरा मूल गादी कबीर मठ के संत विवेक दास का मानना है कि पंचगंगा घाट कबीर के संत कबीर बनने का सबसे बड़ा प्रमाण है। इसी घाट पर काशी के महान विद्वान संत रामानंदाचार्य रहते थे जिनसे एक नाटकीय परिस्थिति में बालक कबीर ने शिष्यत्व ग्रहण किया था। कबीर सागर ग्रंथ में बताया गया है कि रामानंद नीची जाति के लोगों को दीक्षा नहीं देते थे जबकि कबीर रामानंद जी से ही दीक्षा लेना चाहते थे। एक दिन रामानंद जी सुबह नहाने गए थे तभी कबीर बच्चे का रूप धारण करके घाट की सीढ़ियों पर लेट गए। रामानंद जी का पैर कबीर को लग गया तो वे रोने लगे। रामानंद जी ने झुककर उनको उठाया और राम का नाम जपने को कहा। इसी राम नाम को उन्होंने दीक्षा मंत्र मान लिया और तभी से रामानंद, कबीर के गुरु हुए। आगे चलकर रामानंद के शिष्यों में कबीर सर्वोच्च कोटि के शिष्य साबित हुए।

कबीरदास के कबीर चौरा वाले निवास पर साधु संतों का नियमित जमावड़ा रहता था। कहते हैं कि उन्होंने कलयुग में

कबीर मठ का मुख्य द्वार

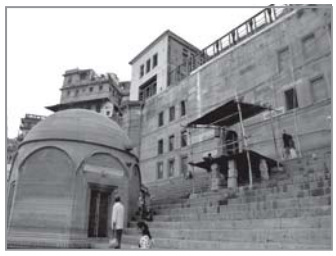

पढ़े-लिखे न होने की लीला की थी, परंतु वास्तव में वह बहुत विद्वान थे । इसका अंदाजा उनके दोहों से लगाया जा सकता है, यथा --- 'मसि कागद छुयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।' उन्होंने स्वयं ग्रंथ न लिखने की भी लीला की लेकिन

अपनी वाणी में बोलकर शिष्यों से उन्हे लिखवाया। उनके समस्त विचारों में राम नाम (परमपिता परमेश्वर का वास्तविक नाम) की महिमा प्रतिध्वनित होती है। कबीर एक ही परमेश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। मूर्ति पूजा, रोज़ा, ईद, मस्जिद, मंदिर इन सब के विरोधी थे। उनका मानना था की इन क्रियाओं से किसी को मोक्ष संभव नहीं। वह एक जगह कहते हैं- **'हरि मोर पिऊ, मैं राम की बहुरिया'** तो दूसरी जगह कहते हैं, **'हरि जननी मैं बालक तोरा'**। फिर समाज के अहंकार पर चोट करते हुए कहते हैं --- 'बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर। पंछी को छाया नहीं फल लागे अति दूर ॥

संत कबीर को मस्तमौला रहस्यवादी कवि कहा जाता है। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के निर्गुण शाखा के ज्ञानमार्गी उपशाखा के वह महानतम कवि थे। उन्होंने सामाज में फैली कुरीतियों, कर्मकांड, अंधविश्वास की निंदा की और सामाजिक बुराइयों की कड़ी आलोचना की। काशी के हिन्दू और मुसलमान दोनों उनके अनुयायी थे। उनको अपने सच्चे ज्ञान का प्रमाण देने के लिए जीवन में कई कठिन कसौटियों से गुजरना पड़ा था।

काशी के कबीर थे यह कबीर का गौरव नहीं था बल्कि यह काशी का गौरव है कि कबीर उनके थे। कबीर ने जो भाषा चुनी वही काशी की भाषा हो गयी और आज भी वही भाषा है -- सधुक्कड़ी एवं पंचमेल खिचड़ी। इनकी भाषा में हिंदी भाषा की सभी बोलियों के शब्द समाहित हैं। राजस्थानी, हरियाणवी, पंजाबी, हिन्दी खड़ी बोली, अवधी, ब्रजभाषा के शब्द भरे हुए हैं। ऐसा माना जाता है की रमैनी और सबद में ब्रजभाषा की अधिकता है तो साखी में राजस्थानी तथा पंजाबी मिली खड़ी बोली की। कबीर न तो किसी गुरुकुल में गए थे और न ही कोई तत्कालीन शिक्षा ग्रहण किये थे इसलिए उनके दोहों को उनके शिष्यों द्वारा ही लिखा या संग्रहीत किया गया था। उनके दो शिष्यों -- भागोदास और धर्मदास ने उनकी साहित्यिक विरासत को संजोया ।

भक्ति आंदोलन को गहरे स्तर तक प्रभावित करने वाली उनकी रचनाएँ सिखों के गुरुग्रंथ साहेब में सम्मिलित की गयी हैं। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में संत कबीर के 226 दोहे हैं और इसमें शामिल किये गए अन्य भक्तों और संतों में संत कबीर के ही सबसे अधिक दोहे दर्ज किए गए हैं। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कबीर के दोहों का अंग्रेजी अनुवाद करके कबीर की वाणी को विश्वपटल पर स्थापित करने में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिन्दी में बाबू श्यामसुन्दर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा अनेक विद्वानों ने कबीर और उनकी साहित्यिक साधना पर ग्रन्थ लिखे हैं।

तत्कालीन हिंदू और इस्लाम दोनों धर्म के लोग ही कबीर के अनुयायी थे क्योंकि वे अपना इकतारा लेकर दोनों धर्मों को परमात्मा की जानकारी दिया करते थे। वह काशी की पगडंडियों पर घूम घूम कर कहते रहते थे कि हम सब एक ही परमात्मा के बच्चे हैं। उन्होंने अपनी भाषा सरल और सुबोध रखी ताकि वह आम आदमी तक पहुंच सके। उन्हें शांतिपूर्वक जीवन प्रिय था और वह अहिंसा, सत्य, सदाचार जैसे गुणों के पालक थे। वह सिर्फ मानव धर्म में विश्वास रखते थे।

उनके जीवन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण संस्मरण यहाँ काशी

में किंवदंती के रूप में प्रचलित है। एक बार गुरु रामानंद ध्यानस्थ मानसिक रूप से पूजा कर रहे थे और अपने इष्ट प्रभु श्रीराम को मानसिक रूप से फूलों का हार पहना रहे थे लेकिन हार थोड़ा छोटा था तो उसे पहनाने में दिक्कत आ रही थी। बार बार प्रयास करने के बावजूद वह फूलों का हार नहीं पहना पा रहे थे तभी वहाँ उपस्थित अन्य शिष्यों के साथ बैठे कबीर बोल उठे कि हार छोटा पड़ रहा है तो उसे तोड़ दीजिये। बाद में जब गुरु की मानसिक पूजा पूरी हो गई तो उन्होंने अपने शिष्यों से पूछा कि हार तोड़ने की बात किसने कही तो शिष्यों ने कबीर का नाम लिया। इस घटना के बाद कबीर, गुरु रामानंद के परम प्रिय शिष्य हो गए और उनकी ख्याति भी पूरी काशी में फैल गई।

लेखक : वरिष्ठ पत्रकार एवं साहित्यकार, पूर्व न्यूज़ एडिटर, प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (पी टी आई) नई दिल्ली हैं।

■

संत कबीर मठ मूल गादी..... कबीर चौरा

विशाल परिसर में स्थित वाराणसी (काशी) में कबीर की कर्म स्थली कबीर चौरा मूल गादी एक दिव्य रमणीक साधना स्थली के रूप में विख्यात है। यहाँ गहन साधना के लिए कबीर पंथी दूर दूर से आते हैं। यहाँ जो ध्यान साधना करने वाले साधक आते हैं, वे यहाँ के दिव्य ऊर्जा के आलोक से आच्छादित होकर अभिभूत हुए बिना नहीं रहते। यहाँ दिव्यता का महा सूर्य उतरता है।

कबीर मठ के परिसर ने हालाँकि अब नया रूप ले लिया है लेकिन आधुनिक साज सज्जा से कबीर से जुड़ी तमाम स्मृतियों को संजोकर रखने का प्रयास किया गया है। जिस चबूतरे पर बैठकर कबीर सत्संग किया करते थे उस चबूतरे ने नया रूप धारण तो कर लिया है। उसे अब एक मंडप का रूप दे दिया गया है। लेकिन चबूतरे का आकार चबूतरे जैसा ही है। वहाँ अब मिट्टी की जगह चिकने पत्थरों ने ले लिया है। कबीर की सिद्ध समाधि, मठ के विशाल भवन के एक भव्य कक्ष में स्थापित है जहाँ कबीर का एक चित्र है। इस समाधि स्थल को मगहर से कुछ अवशेष लाकर बनाया गया है। परिसर में ही समाधि के सामने बीजक मन्दिर है जिसके दीवारों पर कबीर की उक्तियों को उकेरा गया है। बीजक मन्दिर के सामने ही पवित्र भंडारा है जो कबीर के समय से ही चला आ रहा है।

पूरा परिसर तीन हिस्सों में विभाजित है। जिस हिस्से में समाधि मन्दिर है उसके पिछले हिस्से में टीले पर कबीर का वह कुँआ आज भी है जहाँ का पानी कबीर अपने जीवन यापन के लिए इस्तेमाल किया करते थे। उसी कुँए के पास ही कबीर के माता पिता नीरू और नीमा की समाधि स्थल

भी है और उसके बगल में कबीर की वह झोंपड़ी जिसमें वह रहा करते थे हालाँकि झोपड़ी को अब हाइटेक तकनीकी से नया रूप दिया गया है। बन्दरों के झुंड को उस झोपड़ी में आराम फरमाते हुए देखा जा सकता है। कुएँ के पास ही कबीर की एक मूर्ति स्थापित की गई है। इसके अतिरिक्त परिसर में नीम, पीपल के विशाल पेड़ हैं जो परिसर को प्राकृतिक रूप प्रदान करते हैं। परिसर के अंदर कबीर की स्मृतियों से जुड़ी कई मूर्तियों को भी स्थापित किया गया है। कोई चंतारा बजा रहा है तो कोई मृदंग और ढोलक कोई महिला नृत्य की मुद्रा में है तो कोई प्यासे को पानी पिला रही है। कबीर सबके आगे नाचते हुए चल रहे हैं। अल्हड़ मौज मस्ती के माहौल को दर्शाती ये सभी मूर्तियाँ जीवंत हैं।

काशी तो प्राचीन काल से ही जहां मोक्षदायिनी नगरी के रूप में जानी जाती थी वहीं मगहर को लोग इसलिए जानते थे कि यह एक अपवित्र जगह है और यहां मरने से व्यक्ति कथित रूप से अगले जन्म में गधा होता है या फिर नरक में जाता है। बस्ती से गोरखपुर के रास्ते काशी से क़रीब दो सौ किलोमीटर दूर संतकबीर नगर ज़िले में छोटा सा क़स्बा है मगहर। इसे खाँटी बनारसी मग्गह भी कहते हैं। कबीर ने अपनी मृत्यु के लिए मगहर को चुना था। लोगों का यही अंधविश्वास तोड़ने के लिए कबीर ने मृत्यु के लिए मगहर चुना। मगहर में कबीर की समाधि भी है और मजार भी, जहाँ हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मों के लोग पूरी श्रद्धा से जाकर शीश नवाते हैं। कबीर की यह उक्ति मगहर के लिए बहुत ही प्रसिद्ध हुई।

क्या काशी क्या ऊसर मगहर, राम हृदय बस मोरा।
जो कासी तन तजै कबीरा, रामहि कौन निहोरा।

सौजन्य
डॉ. कवीन्द्र ननारायण श्रीवास्तव ■

संत कबीरदास चित्र वीथी

कबीर का वही कुंआ जिसका कबीर इस्तेमाल करते थे

कबीर का चबूतरा जिस पर बैठकर वह सत्संग किया करते थे।

बीजक मंदिर

हरियाली और पेड़ों से लक दक कबीर मठ का परिसर

मुख्य भवन में समाधि स्थल

भवन का मुख्य प्रवेश द्वारा

कबीर की हाइटेक झोपड़ी में आराम फरमाते बंदर

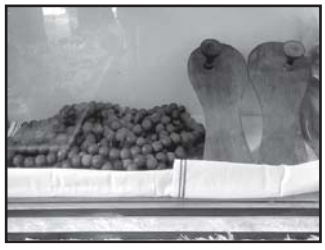

नीरू और नीमा की समाधि स्थल

कबीर मठ में कबीर की मूर्ति

पद्मश्री से सम्मानित डॉ. कपिल तिवारी

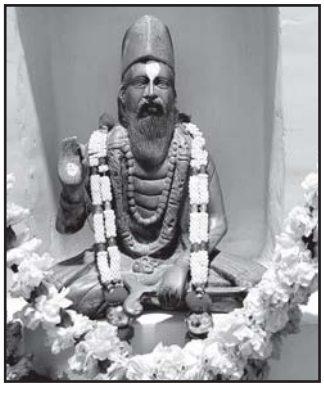

डाक टिकिट

डाक टिकिट

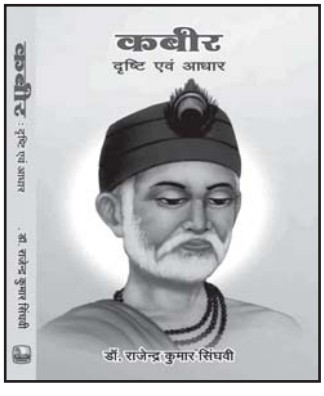

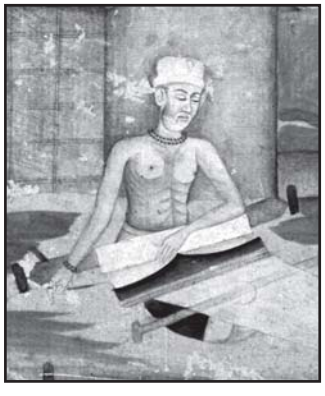

- संकलन साभार

संत कबीरदास चित्र वीथी

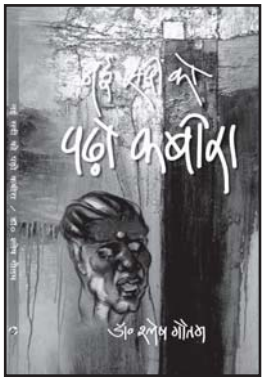

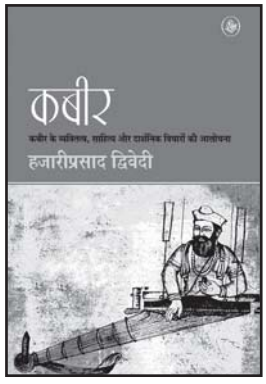

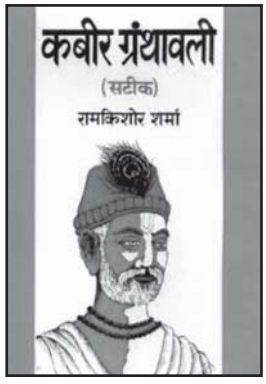

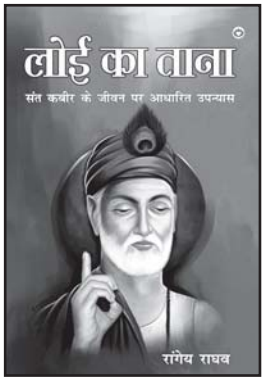

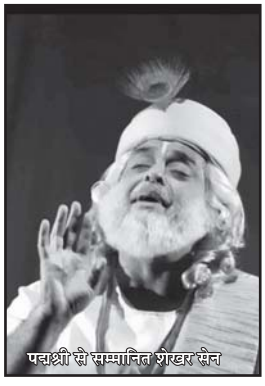

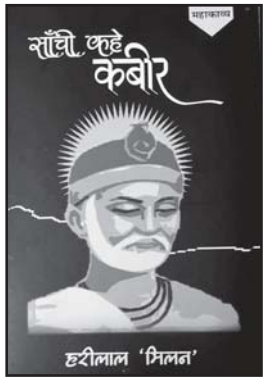

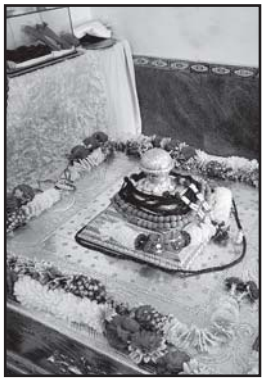

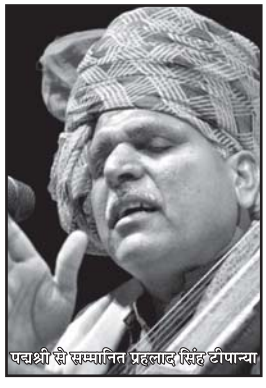

कबीरदास अपने दो साथियों के साथ, राजस्थान के रामगढ़ स्थित पोद्दार छतरी में बना एक चित्र।

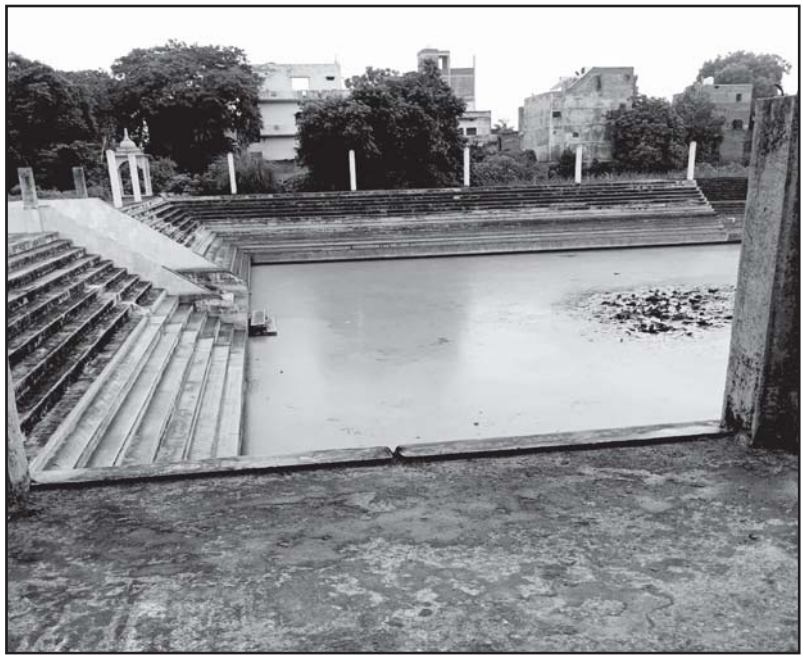

बनारस मे कबीरदास प्राकट्य स्थल तथा लहरतारा तालाब जहां कबीरदास जी शिशु अवस्था मे मिले थे।

- संकलन साभार

आलेख

संत पीपाजी की दृष्टि में महात्मा कबीर

डॉ. रमेश कनेसरिया

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के प्रणेता आचार्य रामानन्द ने आध्यात्म की जो पावन सलिला प्रवाहित की थी, उसने सम्पूर्ण उत्तरी भारत ही नहीं सुदूर दक्षिण तक जन जन को प्रेम और आत्मविश्वास से अभिषिक्त किया था। आचार्य के सैकड़ों शिष्य थे परन्तु उनमें जो बारह प्रमुख, विशिष्ट शिष्य थे वे भक्तविजय, भक्तमाल, परिचयी आदि में 'द्वादश महा भागवत' रुप में जाने जाते हैं, जिनमें अनंतानंद, योगानंद, सेनजी, धन्ना, रैदास आदि के साथ कबीर और पीपा की भी गणना होती है। यहां हमें कालक्रम देखने की आवश्यकता नहीं, कर्मक्रम को दृष्टि में रखना चाहिए, संतों और संतों के चरित लेखकों को यही अभीष्ट रहा है।

आचार्य रामानन्द अपनी शिष्य मंडली सहित जब गढ़ गागरोन (वर्तमान में झालावाड़ जिला अंतर्गत) पधारें थे तब उस शिष्य मंडल में कबीर, रैदास आदि भी सम्मिलित थे। इस यात्रा के बाद गागरोन के राव नरेश के मन में 'मुक्ति' का भाव आया और कालांतर में वे दीक्षा प्राप्त कर सद्गुरु द्वारा 'पीपा' नामित किए गये अस्तु कबीर साहब उनके अग्रज गुरु भाई स्थापित होते हैं।

पीपा के इस आध्यात्मिक पथ पर कबीर और पूर्ववर्ती संत नामदेव के विचारों का बड़ा गहन प्रभाव रहा है। पीपा ने एकाधिक पदों में इसे स्पष्ट रूप से स्वीकार भी किया है। यथा :

'जो कलि नाम कबीर न होते।
तो लोक वेद अरू कलजुग मिली करी, भक्ती रसातल देते ।। टेक ।।
अगम निगम की कही कही पांडे, फल भागोत लगाया।
राजस, तामस,, सातुक कहि कहि, इन ही जगत भुलाया ।।1 ।।
सरगुन कथि कथी मीठा खाया,काया रोग बढ़ाया।
निरगुन नीम पीयो नहीं गुरुमुख, (ताते) हाटे जीव बिकाया ।।2 ।।
वक्ता-श्रोता दोऊ भूले, दुनियाँ सबै भुलाया।
कल्प वृच्छ की छाया बैठा, कयूं कल्पना जाया ।।3 ।।
अंध लकुटिया गही जो अंधे, पातक कूप परे कित थोरे ।
अवरन, वरन दोऊ रस अंजन, आँख सबन की फौरे ।।4 ।।
हमसे पतित कहां कहि रहते, कौन प्रीत मन धरते।
नाना बानि देखी सुनि श्रवना, बहुमारग अनुसरते ।।5 ।।
त्रिगुनरहित भक्ति भगवत की, तिहि बिरला कोई पावे।

उपरोक्त पद में नामदेव और कबीर का उल्लेख संत पीपा ने तीन बार किया है। वे कहते हैं यदि कलयुग में नामदेव व कबीर ने जन-जन को जाग्रत न किया होता तो भक्ति रसातल में पहुँच गई होती। ईश्वर को आगम-निगम, राजस-तामस- सात्विक गुणों का वर्गभेद कहकर विद्वजनों ने भी संसार को भ्रम/संदेह में डाल दिया था। सगुण उपासना आडम्बरों मे ग्रस्त होकर लोगों की परेशानियों को बढ़ा रही थी और निर्गुण मार्ग सदगुरु के अभाव में अप्रितिकर था ऐसे समय में आम साधक का निष्काम भक्ति की ओर आकृष्ट होने का मार्ग कोई बिरला साहसी ही चुन पाता था। ऐसे संक्रमण काल में नामदेव-कबीर और अन्य संतो ने जागरण जगाया।

यद्यपि संत नामदेव पीपाजी के पूर्ववर्ती थे और आजिविका के लिये सीवन कर्म करते थे। नामदेव ने स्वयं लिखा है..

'मनु मेरो गज, जिव्हा मोरी काति।
जपु जपु काटूं जम कु फांसी ।।'

वे संत नामदेव से काफी प्रभावित थे और सम्भवत: इसीलिए उन्होंने अपने अनुयायियों को सीवन कर्म अपनाने का सुझाव दिया होगा। वे कहते थे..

'हाथां सू उद्यम करे, मुख सू उचरे राम।
पीपा साधां रो धरम, रोम रमाड़े राम ।।'

संत कबीर के गहरे प्रभाव के कारण ही जीवन के उत्तरकाल में विशेष कर सहचरी सीता के साकेत गमन पश्चात् योग साधना की ओर अधिक आकृष्ट हो गये थे।

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के ख्यात संत कबीरदासजी ने भी अपने एक पद में अपने गुरुभाई पीपाजी का नामोल्लेख इस प्रकार किया है..

सुखसागर में आय के मत जाय रे प्यासा ।। टेक ।।
अजहूँ समझ नर बावरे, जम करत निरासा ।
निरमल नीर भरे तेरे आगे, पी ले स्वाँसो स्वाँसा ।।1 ।।
मृगतृस्ना-जल छाड़ बावरे, करो सुधारस-आसा ।
ध्रु प्रहलाद- शुकदेव-पीपा और पिया रैदासा ।।2 ।।
प्रेमहि संत सदा मतवाला, एक प्रेम की आसा।
कहै कबीर सुनो भई साधो, मिट गई भय की बासा ।।3 ।।

यही सुधारस या रामरस पीते पिलाते गढ़ गागरोन के तात्कालीन शूरवीर नरेश प्रतापराव जी परमाचार्य गुरु रामानंदजी की आज्ञा से पीपा हो गए। उनकी एक साखी है..

'पीपा नाम खूबी धरे , अजब करे संकेत।
पी'-'पा', 'पा'-'पी' रामरस, चेत चेत जीव चेत ।।'

(लेखक वरिष्ठ चिकित्सक हैं और संत साहित्य पर लंबे समय से सृजनशील हैं।)
नई आबादी स्कीम नम्बर 2 मंदसौर (मध्यप्रदेश) पिन : 458001

■

आलेख

आत्मकथ्य के साक्ष्य से कबीर की आत्मकथा

टोपी पहिरे माला पहिरे, छाप तिलक अनुमाना/साखी सब्दहि गावत भूले आतम खबरि न जाना

डॉ विभा ठाकुर

कबीर की वाणी का सार है, आत्मा ही परमात्मा है। आत्म ज्ञान ही परमात्म ज्ञान है क्योकि आत्मा भौतिक शरीर की जीवनी शक्ति है। मानव की सत्ता, प्राण रूप आत्मा के कारण है और इस प्राण शाक्ति का विश्व व्यापक रूप ब्रह्म है। अत: स्वयं के माध्यम से आत्मा को जानना अर्थात आत्मखबर रखना ही मनुष्य का परम धर्म है। किंतु लोग बाह्य आडंबर में फंसकर साखी शब्द के मूल अर्थ को भूल जाते हैं। इस चिंतन एवं अनुभव प्रकाश की पृष्ठभूमि पर कबीर जैसे भक्त कवि की अभिव्यक्ति को परखना अपेक्षित है। कबीर ने अपनी वाणी के विभिन्न अंगों के अंतर्गत अपने व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक सामाजिक सम्बंधों, आर्थिक राजनैतिक परिस्थितियों एवं धर्म, साधना और अध्यात्म क्षेत्र के मूल्य-बोध को अनेक स्तरों पर अभिव्यक्त किया है। उत्तर भारत में कबीर अपने सुचिंतित विचार और भक्ति के कारण उनकी लोकप्रियता ने जनमानस को इतना प्रभावित किया कि लोक में कबीर आज मिथक बन चुके है। लोक स्मृतियों और किंवदंतियों के आधार पर कबीर को समझ पाना इतना आसान नहीं। इन किवदंतियों के भीतर सांस्कृतिक संकेतात्मकता की ऐतिहासिक सत्यता शोध का विषय है। किसी समय और समाज के चित, चिंतन और चिंताओं को समझने के लिए उसमें प्रचलित किंवदंतियों के संकेतों को समझना जरूरी है। इसलिए कबीर को और उनके समय को समझने के लिए कबीर की लोकस्मृति के साथ संवाद जरूरी है। कारण लिखित साहित्य भी तो कही न कही स्मृति कोषों के आधार पर गढ़े जाते है।

'सभी कलाएं कलाकार द्वारा की गई आत्माभिव्यक्ति का ही प्रतिफल है। यूं तो साहित्यिक विधा के रूप में आत्मकथा लिखने की शुरूआत आधुनिक युग में हुई लेकिन इसके बीज हमें मध्यकाल में (बनारसीदास कृत अर्धकथानक) देखने को मिल जाते है। विद्वानों के अनुसार आत्मकथा का उदय भक्तिकाल से माना जाना चाहिये क्योंकि भक्तिकाल में संत कवि अपने चरित्र के साथ जीवन संघर्ष तथा सामाजिक स्थिति के बारें में स्पष्ट रूप से कहते दिखाई देते है। उस समय आजकल के प्रचलित अर्थ में जीवनियां और आत्मकथाएं नही लिखी जाती थी। वैसे भी संतो और भक्तों की रूचि आत्मकथा लिखने से ज्यादा आत्मखबर बताने में थी शायद इसीलिए कबीर समेत अन्य भक्तिकालीन कवियों ने अपने बारें में बताने की जरूरत नहीं समझी। धर्मनिष्ठ समाज सुधारकों के विशिष्ठ जीवनानुभवों से लोक का कल्याण होता है। उनकी रचनाओं में उपदेशों और सूक्तियों की भरमार होती है। कबीर के काव्य में भी सूक्तियों की भरमार है उनके उपदेश के पीछे जीवनानुभूतियों छिपी हुई हैं। जो एक सामान्य मनुष्य की होती है। कबीर की साखी आत्मनिरीक्षण व स्वानुभूति की अभिव्यक्ति थी। उनके पदों में आत्मकथन के वर्णन अथवा प्रसंग उनकी स्पष्टवादिता के कारण मुखरित हुए है। जिसको बड़ी प्रमाणिकता के साथ बार बार दोहराते हुए दिखाई देते हैं-कहे कबीर सुनो भई साधु ... ।

भक्तिकाल के किसी भी भक्त कवि के बारें में शुद्ध अंत:साक्ष्य के आधार पर ठेठ आधुनिक किस्म की आत्मकथा या जीवनी की खोज करना असम्भव है। कहने का आश्य यह है कि कबीर ने स्वयं अपने बारें में कुछ नहीं लिखा किंतु उनके समकालीन साहित्य और जनश्रुतियों की मदद से बहुत सी अनकही बातों को उनके अंत: साक्ष्य से मिलान कर समझा जा सकता है। आत्मभिव्यक्ति की इच्छा एक सार्वभौम सत्य है। कोई भी महान या साधारण व्यक्ति जब अपने सुख-दुख, प्रेम वियोग पीड़ा और आनंद की अनुभूति को सरस शब्दों द्वारा व्यक्त करता है उसे आत्मकथा के अंश विद्यमान होते हैं। रघुवंश के शब्दों में 'हमारे महान भक्त कवियों में इतिहास-पुराण तत्वों का सम्मिश्रण- संयोजन इस प्रकार जन-मानस में हुआ है कि तथ्यों के प्रमाण के आधार पर उसे समझना सम्भव नहीं है। तथ्यों के संकलन के स्रोतों की प्रमाणिकता ही संदिग्ध है। सीमित और सांकेतिक सामग्री ही विश्वसनीय मानी जा सकती है ।... जीवन सूत्रों का ताना-बाना बुनने वाली अनेक जनश्रुतियां इनके जीवन के बारे में प्रचलित है जिनके माध्यम से कवि के जीवन को चमत्कारों- रहस्यों से महिमा मंडित करने का प्रयत्न किया गया है। पर इनमें कतिपय ऐसे सूत्र खोजे जा सकते हैं, जो कवि के व्यक्तित्व को रूपायित करने में सहायक हो सकते है। लेकिन इन कवियों के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाले अनेक प्रसंग संदर्भ तथा अनुभव उनकी आत्मपरक काव्याभिव्यक्तियों में निहित है। ये सारे प्रसंग-संदर्भ स्पष्ट तथा सीधे रूप में उसके जीवन पर सदा प्रकाश नही डालते, पर इनके माध्यम से कवि जीवन की अनेक परिस्थितियों को देखा समझा जा सकता है, कवि के व्यक्तिगत सम्बंधों को परखा जा सकता है।' पृ.20 कबीर एक नई दृष्टि मध्यकालीन संतो के लिए कविता आत्मनिरीक्षण व स्वानुभूति की अभिव्यक्ति थी। ये सच है कि संत

कवियों ने आधुनिक अर्थो में आत्मकथा नही लिखी किंतु अंजाने में ही आत्मखबर के बहाने अपने युग और समाज को अपने कथनों में दर्ज करने की कोशिश की है और इन कथनों को लोकस्मृतियों में पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित रखा गया यदि ऐसा न होता तो इतिहास की गर्द से कबीर को ढूंढ निकलना आज असंभव होता। कबीर ने जो आत्मखबर दी है वह हमें वाचिक परम्परा द्वारा प्राप्त हुई है। कोई लिखित प्रमाण न होने के कारण इतिहासकार एच एच विल्सन ने कहा था – हो सकता है कि कबीरनाम का कोई व्यक्ति कभी हुआ न हो और कबीर ज्ञानी नाम मात्र जेनेरिक नाम या अनेक फ्रीथिंकर्स द्वारा चुन लिए गए तखल्लुस भर रहा हो। 1829 ई. में **ए स्केच ऑफ रिलीजस सेक्ट्स ऑफ हिंदूज** के लेखक एच.एच. विल्सन को लगा था कि कबीर किसी वास्तविक व्यक्ति का नाम नही, जेनेरिक संज्ञा, एक पदवी भर है। इस पदवी को धारण करनेवाले न जाने कितने लोगों ने कबीर नाम से रचनाएं की है। उत्तर भारत में एक खास मिजाज की रचना को कबीर कृत बताया जा सकता है, और ये रचनाएं इतनी संख्या में तथा इतने विविध स्रोतों से मिलती है कि हो ना हो कबीर अवश्य एक जेनेरिक शब्द है, किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं। पृ.19 अकथ कहानी प्रेम की हम सब जानते है कि इतिहास तो सत्ता और शासकों के इशारों पर गढ़े जाते है। अली जाफरी के अनुसार पुरानी इतिहास लिखने की कला चूंकि बादशाहों पुरोहितों और सूरमाओं के गिर्द घूमती थी और उन्हीं की गाथाओं को अपनी पूंजी समझती थी इसलिए उसने हमेशा विद्रोहियों, कवियों और कलाकारों की उपेक्षा की और सिर्फ दंड और पुरस्कार के किस्से बाकी रह गए (किसका मुंह मोतियों से भरा गया और किसकी गुस्ताख जबान गुद्दी से खींच ली गई) लेकिन समय का प्रतिशोध बडा क्रूर होता है। बादशाहों के कारनामें इतिहास की किताबों में बंद है और कवियों के कारनामें दिलों के अंदर पीड़ा और उल्लास की लहरे बनकर उत्तर गए है। पृ 5 कबीर बानी कबीरदास के जीवनचरित्र के सम्बंध में तथ्य की बातें बहुत कम ज्ञात है यहां तक की उनके जन्म और मरण के संवतों के विषय में भी अब तक कोई निश्चित बात ज्ञात नही हुई। कबीरदास के विषय में जो कुछ लिखा है सब जनश्रुतियों के आधार पर है। इसलिए बाह्य साक्ष्य को कबीर के काव्य पर आरोपित करने की अपेक्षा अंतसाक्ष्य के आधार पर कबीर के स्वर को सुना एवं समझा जाना चाहिये। कबीर को केवल जुलाहा शुद्र या दलित के रूप में समझने से ज्यादा महत्वपूर्ण है उनकी अभिव्यक्ति को समझना जो आज भी मनुष्य मात्र के लिए उपयोगी है। पुरूषोत्तम जी के अनुसार 'कबीर की कविता की ताकत इस जिद में है कि वे कविता कर रहे हैं ऐसे जगत में जहां बहुत से लोग साधु का ज्ञान नहीं उसकी जाति ही पूछते है, लेकिन सपना देखते हैं ऐसे समय का ऐसे अमर देश का जहां मनुष्य का मोल उसकी जाति के आधार पर नही साधना के आधार पर होगा। ... उनकी कविता का सपना किसी एक जाति बिरादरी पंथ या मजहब का सपना नहीं, मनुष्य के साझे चैतन्य का सपना है। वह एक और धर्म स्थापित करने का नहीं, धर्म के फाउस्टियन पैक्ट से मनुष्य की मुक्ति का धर्मेत्तर आध्यात्म का सपना है।' पृ. 38 अकथ कहानी प्रेम की निर्गुण भक्ति आन्दोलन ऊपर से भले धार्मिक आवरण में लिपटा प्रतीत हो मूलत: वह सामाजिक आर्थिक शोषण के विरूद्ध कृषि एवं ओद्योगिक उत्पाद से संबद्ध हिंदू–मुस्लिम दोनों समुदायों की दलित जनता का क्रान्तिकारी संघर्ष था । संतकाव्य में अगर आखिल भारतीय विशेषताएं है तो उनमें जातीय संघर्ष और पहचान भी है। शायद यही वजह है कि कबीर समेत सभी संतो ने अपनी जाति का निस्संकोच उल्लेख किया। कबीर ने डंके की चोट पर स्वयं को काशी का जुलाहा कहते हुए संकोच नहीं किया। मैं तो हुं काशी को जोलाहा... । और एक बार नहीं बार–बार अपने को जुलाहा घोषित किया है इस स्वीकार में उनके व्यक्तित्व का तेवर लाक्षित किया जा सकता है।

उस युग में निर्भीक बेबाक स्वभाव वाला आखिर कोई तो मनुष्य रहा होगा जिसे पिछले पांच सौ सालो में कभी भक्त तो कभी संत तो कभी समाज सुधारक तो कभी संवेदनशील कवि के रूप में सिद्ध करने की कोशिशें लगातार होती रही है। स्वयं कबीर ने अपने माता पिता का कहीं कोई उल्लेख नही किया। अपने संबंध में ये जरूर कहा है– तू ब्राह्मण मैं काशी का जुलाहा .. अपने को जुलाहा और काशी (बनारस) का रहने वाला बताया है। वैवाहिक जीवन बिताने की संभावना मानी जा सकती है उनकी पत्नी अथवा शिष्या के रूप मे लोई का नाम लिया जाता है। मेरी बहुरिआ को धनिया नाऊ लय रखिओ राम जनिआ नाऊ / पहली कुरुपी कुजाति कुलखनी, अबकी सरुपि सुजाति सुलखनी / स्वयं कबीर अपने जीवन में भक्ति साधना का आरंभ तीस वर्ष की आयु बताते है तब तक वे अशुद्ध साधना मे लगे हुए थे। कबीर ने स्वच्छंद जीवन बिताया किसी मत या सम्प्रदाय से जुड़ें नहीं, किसी भी साधना पद्धति से बंधे नहीं। समाज में व्याप्त अंधविश्वास को तोड़ने के लिए कबीर ने स्वयं पहल की। काशी को मोक्षदापुरी कहा जाता है। इसी के विरोध में कबीर अपने जीवन के अंतिम दिनों काशी छोड़कर मगहर चले गए। जो काशी तन तजे कबीरा, तो रामहि कहु कोन निहोरा ।

भक्ति के लोकवृत में संवाद विवाद कर रहे लोग कबीर के व्यक्तित्व और कवितत्व की उन विशेषताओं को जानते थे जिन्हें सबसे सटीक अभिव्यक्ति नाभादास ने दी है। डोम जाति में उत्पन्न नाभादास की प्रसिद्ध रचना भक्तमाल मध्यकाल में रामचरित मानस के बाद सबसे लोकप्रिय रचना मानी जाती थी। उस पर लिखी गई अनेक टीकाएं भी उसकी लोकप्रियता को प्रमाणित करती है। भक्तमाल पर प्रियादास की टीका वार्तिका प्रकाश ऐसी ही एक प्रसिद्ध टीका है जिसमें ब्राह्मणों द्वारा संतो–भक्तों के उत्पीड़न की कहानियां भरी पड़ी हैं। कबीर अपने अनभै सांचा व्यावहारिक ज्ञान की तार्किक प्रणाली से पोथी–पंडितों और मुल्लाओं को बराबर चुनौती देते है और इनके उत्पीड़न का शिकार बनते है। बाबजूद

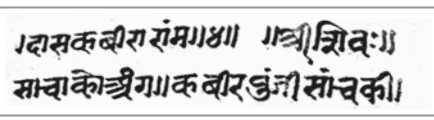

इसके ब्राह्मण समेत मुल्ला काजी इनका बाल भी बांका नही कर पाते। हिंदू और मुसलमान दोनों धर्म के नेताओ का इनसे विरोध था। उस समय सिकंदर लोदी उत्तरी भारत में शासन करता था । शेख तकी और बाकी मुसलमानों की शिकायत करने पर बादशाह की क्रोधाग्नि का सामना कबीर को करना पड़ा । यद्यपि संतो द्वारा ब्राह्मण कर्मकांड का विरोध कोई नई बात नहीं थी। उनकी लंबी पृष्ठभूमि थी सवर्ण संस्कृति के समानांतर जनसंस्कृति का प्रसार वैदिक युग से होता रहा है। चावार्क दर्शन और बौद्ध नैयायिक पहले ही वैदिक धर्म और कर्मकांड को नकार चुके थे। हिंदी में सिद्धकवि सरहपाद और निर्गुण संत कबीर को चावार्कों, लोकायतों आजीवकों से तर्क आधारित भक्ति विरासत में मिली है। उन्होंने किसी प्रकार की औपचारिक शिक्षा नहीं ली थी लेकिन अपने अध्यव्साय सत्संगति जीवन के जीवंत अनुभवों के आधार पर ज्ञान अर्जित किया इसी ज्ञान ने उन्हे बहुश्रुत और ज्ञानी बना दिया। कबीर बीजक की एक साखी द्वारा कबीर के निरक्षर होने का प्रमाण दिया जाता है – **मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहि हाथ? चारिउ जुग को महातम, मुख्हिं जनाई बात ।।** इससे तो उनका कथन केवल इतना ही जान पड़ता है कि उपदेश देने के लिए मैंने लिखा पढ़ी की आवश्यकता नहीं समझी। चारों युगों की महत्वपूर्ण बातें मैंने सबके सामाने मौखिक रूप में ही प्रस्तुत कर उनका परिचय करा दिया। जनश्रुतियों तथा अंत:साक्ष्य के संदर्भों को परखते हुए समझा जा सकता है 'उपदेश सदैव जबानी होता है, प्रवचन जबानी होता है शिष्यों से वार्ता जबानी होती है, संतो से विचार विमर्श जबानी होता है। कबीर न तो गायक थे और न उपदेशक है उनकी ज्ञानमयी वाणियां निकलती थीं उनके शिष्य या अन्य लोग उसे लिपिबद्ध करते रहते थे। लोगों द्वारा लिपिबद्ध किए उपदेश जनमानस में संरक्षित हो गये और व्यक्ति से व्यक्ति हस्तांतरित होने के कारण लिप्यांतर होता रहा और क्षेपक भी पडते रहे।' पृ 46. आधी साखी कबीर की हमको याद रखना चाहिये कि कबीर ने कोई किस्सा, कहानी, संस्मरण वार्ता नही लिखी, न कोई टीका लिखी । उन्होंने जो कुछ कहा है वह उनका अपना मौलिक चिंतन और आत्मानुभूति है। जिसे उन्होंने शब्दों में अभिव्यक्त किया, कबीर के जितने प्रमाणिक ग्रंथ है वो स्वरचित न होकर उनके शिष्यों द्वारा रचा गया जिसमें पाठांतर आना भी स्वाभाविक है। वेस्कट कहते है 'ज्ञात होता है कि कबीर की शिक्षाएं मौखिक थी और वे उनके पीछे लिखी गयी। बीजक और आदिग्रंथ सबसे पुराने ग्रंथ है जिनमें उनकी शिक्षाएं लिखी गयी है। यह भी सम्भव है कि इनमें से कोई पुस्तक कबीर के मरने के पचास सौ वर्ष बाद लिखी गई हो आज यह विचारना कठिन है कि वे ठीक उन्हीं शब्दों में लिखी गयी है जो कि गुरु के मुख से निकले है और यह बात तो और भी कठिनता से मानी जा सकाती है कि उनमें और शब्द नहीं मिला दिये गये ' पृ 46 कबीर एंड दी कबीरपंथ उन्होंने कोई पंथ नही चलाया कोई सम्प्रदाय नहीं चलाया, कोई धर्म नहीं चलाया, किसी पंथ सम्प्रदाय धर्म की समाप्ति की बात नही की। उन्होने तो केवल मानव मात्र के लिए मानव धर्म का ही उपदेश किया जो मनुष्य होने के नाते सबके लिए उपयोगी है। यदि हम उनकी भाषा उनके शब्द समझने के लिए 600 वर्ष के पूर्व शब्दों की खोज और पहचान कर लें तो कबीर हमारे लिए बहुत आसान हो जाएगें। बोली हमारी पूर्व की हमें लखे नहीं कोय / हमको तो सोई लखे जो धूर पुरब का होए। कबीरपूरब के निवासी थे, लेकिन उनकी रचनाओं को लिपिबद्ध किया पछाह के लोगों ने वह भी मौखिक स्रोतों के आधार पर। बीजक बहुत बाद में संकलित हुआ इसलिए उसमें भी कबीर की भाषा अपने ठेठ रूप में नहीं मिलती। इसलिए लिखित को प्रमाणिक मानने से अधिक सार्थक है लोकवृत में मान्य धारणाओं को समझना। कबीर का पूरा जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक, नाम से लेकर काम तक जनश्रुतिमय हो गया और वह बड़ी तेजी के साथ भी विस्तारित हुई। उनके उपदेश जनसामान्य में प्रवाहित हुए और मुहावरे बन गये। आज कबीर की विचार यात्रा और जीवन यात्रा को जानने का एकमात्र साधन उनकी रचनाओं में उनके द्वारा दिए गए संकेतों को पढ़ना औए विभिन्न स्रोतों में दर्ज की गई किंवदंतियों को सुनना है। कबीर सुनने और सुनाने के कवि है। लगभग पचास फीसद पदों में आता है कहै कबीर 'जो पांडे और मौलाना, राजा और सामंत समझते रहे हैं कि उनका काम है कहना और बाकी सबका सुनना और मानना ।... उनकी खोज संवाद धर्मी मनुष्य की थी जिनसे वे कुछ कह सके कुछ सुन सके । 19 पृ.406 अकथ कहानी प्रेम की विनांद कैलवर्त के शब्दों में कहे तो निहित स्वार्थी ने कबीर को बहुत जल्दी हथिया लिया। सत्रहवीं सदी में गोरखपंथियों और रमानंदियों से लेकर बीसवीं सदी में हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे ब्राह्मणों तथा अन्य सामाजिक समूहों तक ने कबीर का इस्तेमाल अपने अपने विचाराधारात्मक उद्देश्यों और फायदों के लिए किया है। इसी कारण कबीर छाप वाले पदों की संख्या बढती गई है। (दी मिलेनियम कबीर वाणी एकलेक्शन ऑफ पदाज)। कबीर ने चमत्कारों का सदैव विरोध किया लेकिन उनके मरते ही उनके शिष्यो ने उन पर चमत्कार थोप दिया। अपने को न समझा पाने का दुख कबीर को सदैव रहा। यदि ऐसा होता तो वे अपनी लाश के फूल बन जाने और मस्जिद, समाधि बन जाने की भी भविष्य वाणी करते। जाति धर्म संप्रदाय से ऊपर कबीर हिंदू और मुसलमानों दोनों में लोकप्रिय हुए । हिंदूओ ने उन्हें अपना संत माना और मुसलमानों ने अपना पीर। अतिवादिता ने उनके कहे शब्दों को वास्तविक घटना बना दिया जिसका पटाक्षेप शरीर का फूल बनना तथा फूल का आधा–आधा बंटवारा करके मस्जिद और समाधि के रूप में स्थापित करने की जनश्रुति चल निकली ।

मरिहो रे तन कालै करिहो, प्राण छुटे बाहर लै डरिहो ।
काया बिगुर्चन अनगति भांति, कोई जारे कोइ गाड़े माटी ।
हिंदू ले जारे तुरूक ले गाड़े, यहि बिधि अंत दूनों घर छाड़े।
हिंदू कहै हमहि लै जारों तुरूक कहै हमारो पीर ।

दौऊ आय दीन में झगरे, ठाढ़े देखे हंस कबीर ।

कबीर के जीवन का लक्ष्य बहुत ही स्पष्ट था उन्होंने सदैव मजहब और मतवाद से ऊपर मानवता (ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होई) की बात की। कबीर का धर्म भक्ति और मार्ग प्रेम था। उनका विश्वास था कि मनुष्य को वह केवल कर्म करते हुए ईश्वर भक्ति में ही सुख तो प्राप्त हो सकता है। फक्कड़पन व्यक्तित्व के आधार पर सत्य के अनवेषी कबीर सदा ये उदघोषणा करते रहे जो इश्क का मतवाला है वह दुनिया के मापदंड से अपनी सफलता का हिसाब नही करता ।

हमन है इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या।
रहे आजाद या जग में हमन दुनिया से यारी क्या
जो बिछुड़े है पियारे से भटकते, दर बदर फिरते
हमारा यार है हममें हमन को इंतजारी क्या।
खलक सब नाम अपने को बहुत कर सिर पटकता है
हमन गुरू नाम सांचा है हमन दुनिया से यारी क्या

माना गया है कि स्व जीवन का वृतांत ही आत्मचरित है। स्व के जीवन की कथा को किसी न किसी स्तर पर अभिव्यक्त करने की इच्छा शाश्वत एवं विश्वजनीत है। मनीषी समान्य रूप से अपने बारें में कुछ नही कहते वे अपने कृत्यों से जनमानस पर छा जाते हैं। लोक की स्मृतियों में बसे इन कवियों विद्वानों की अभिव्यक्तियां कानों कान पीढ़ी-दर-पीढ़ी समृतियों द्वारा हस्तांरित होती रहती है जिसके कारण इनके मूल पाठों की पहचान असम्भव हो जाती है। भारतीय संस्कृति की मूल दृष्टि विशिष्ट व्यक्तियों के भौतिक जीवन से ज्यादा उनके चरित्र के श्रेष्ठ कृतित्व एवं रचनात्मक पक्ष को प्रचारित करने में रही है। जो बाद में जनश्रुतियां तथा किंवदंतियां बन जाती है। श्रद्धा जनित लोकानुराग के कारण कबीर की वास्तविक उपस्थिति को नकारा नहीं जा सकता। लोक में कबीर की उपस्थिति व व्यापक लोकप्रियता के कारण तुलसी के बाद कबीर सबसे ज्यादा पढ़े और उद्धृत किए जाने वाले मध्यकालीन भक्त कवि हैं।

लेखिका- सहायक प्रोफेसर, कालिंदी कॉलेज (हिन्दी विभाग)
दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति साहित्य एवं समसामयिक विषयों के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ 150/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।

-संपादक

आलेख

आर्थिक समता के पक्षधर संत कबीर

डॉ. शोभा सिंह

कबीरदास ने मानव मूल्यों की स्थापना करते हुए समता एवं बंधुत्व का संदेश दिया है। संत कबीरदास की वाणी का उन्नयन करने में अनेक प्रेरणाओं और परिस्थितियों का योगदान है, जो 15 वीं शताब्दी के पूर्व भी विद्यमान थीं। भारतीय धर्म साहित्य एवं संस्कृति अत्याधिक संकट पूर्ण परिस्थितियों में सांस ले रही थी। निराशा का तिमिर जनता को विनाश की ओर ले जा रहा था उस समय संत कबीर ने समतामूलक विचारधारा का प्रचार प्रसार करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। कबीरदास ने युग की परिस्थितियों को गहनता से एवं निकट से परखा तथा विवेधकारी तत्वों का विरोध किया मानव के आध्यात्मिक और लौकिक जीवन को सुखी बनाने हेतु कबीरदास ने बार- बार सन्मार्ग और कल्याणकारी पक्ष की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया है उन्होंने परमार्थिक सत्ता की एकता निरूपित करके यह प्रतिपादित किया कि मानव-मानव में भेद नहीं है। मानवतावाद से प्रेरित होकर वे संसार को भांति-भांति के कल्याणकारी मार्ग प्रदर्शित करने का प्रयत्न करते हैं, उनके अनुसार मानव के सुख का लक्ष्य या उद्देश्य भौतिक सुख संपत्ति की प्राप्ति नहीं होता। डाक्टर मनोरमा प्रकाश लिखती हैं 'कबीरदास ने अपने समस्त जीवन में धन के प्रति विरक्ति का भाव रखते हुए, मनुष्य के सभी दुखों का मूल अर्थ संचय की प्रवत्ति को मान कर त्याग और अनासक्ति की भावना पर बल दिया है (डाक्टर मनोरमा प्रकाश आधुनिक हिंदी कविता पर कबीर का प्रभाव पृष्ठ 88)।

कबीर कंचन के कुंडल बनी ऊपर लाल जड़ाऊ
दिसही दादे कान जिउ, जिन मनी नाही नाउ
कबीर संतन की झुन्गिया भली भठी कुसति गाऊ
आगि लगऊ तिह धउलहर जिन नही हरि को नाउ

ईश्वर संसार के कण कण में व्याप्त है भौतिकवाद का बड़े से बड़ा आलंबन लेकर भी इस ईश्वर की अनुभूति प्राप्त नहीं की जा सकती। अहंकार के विकास की अपेक्षा लघु होने की महत्ता है। तत्कालीन समाज मे व्याप्त सांप्रदायिकता, जाति भावना, छुआछूत, ऊंच-नीच की भावना अमीर गरीब की विभेदकारी भावनाओं को संत कबीर ने विघटनकारी तत्व माना और उनका खुलकर विरोध किया कबीर ने समाज की अपेक्षा व्यक्ति के सुधार को अधिक महत्व दिया। डॉक्टर रामजीलाल सहायक ने लिखा है कि कबीर ने सामाजिक विषमता को मिटाकर एकता स्थापन का निश्चय किया वे जीवमात्र को एक ही परम पिता की संतान मांनते हैं सब को एक ही स्तर पर लाकर खड़ा करते हैं। कबीर का साम्यवाद अभिव्यक्त सत्ता को पूर्ण संप्रभुता प्रदान करता हुआ मानव एकता सिद्ध करता है। उनके साम्यवाद में आर्थिक विषमता, मानसिक हिंसा किसी के लिए स्थान नहीं है कबीर की दृष्टि में सभी समान है'' वह कहते हैं कि.

'साई से सब होत है है बंदे से कछु नाही,
राई से पर्वत करे पर्वत राई मांहि'

आधुनिक काल के प्रगतिवादी विचारकों की भांति कबीर ने अपने समय की विषमताओं को तोड़ने की प्रेरणा प्रदान की। कार्ल मार्क्स ने तो भौतिक अर्थवाद में सामाजिक संघर्ष के कारणों की खोज की परंतु संत कबीर ने संघर्ष के कारणों में आर्थिक विषमता, धर्म विविधता, वर्ण-वर्ग भेद को प्रमुख ठहराया इसीलिए उन्होंने एक प्रगतिमय पंथ का सुझाव दिया। संत कबीर ने अपने सभी पूर्व विचारकों की भांति संसार को नाशवंत समझा है उनकी दृष्टि में अविनाशी केवल प्रभु है जिसका कोई आकार प्रकार नहीं है कबीर वैभवकृत रूपों की असारता की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि-

कहे कबीर दास फकीरा ऊंचे देखि अवास
कालहि पर भुई लेटणा ऊपरी जामै घास

कबीरदास का कथन है मनुष्य का मन बड़ा चंचल है क्षण भर में ही बंधन से छूटकर विषयों की ओर भागने लगता है प्रत्येक मनुष्य मन की चंचलता के कारण ही परेशान है इसीलिए इस मन को मदमस्त हाथी के समान कहा गया है। इसे शुद्ध आचरण रूपी अंकुश से अपने वश में रखा जा सकता है तभी इस आत्मा को सुख मिलेगा और सिर पर ब्रह्मा का प्रकाश जलने लगेगा। मन को हाथी का रूपक दिया गया है क्योंकि हाथी को कठिनता से वश में किया जा सकता है मन चंचल, बलवान एवं कठिनाई से वश में किया जा सकता है।

कबीर मनहि गयन्द है ,अंकुश दै दै राखु।
विष की बेली परिहारो ,अमृत का फल चाखु।।

भगवत गीता में भी कहा गया है-

चंचलं हि मन: कृष्ण प्रमाथि

कबीरदास की मान्यता है कि धन का संचय अध्यात्म और समाज दोनों के विरुद्ध है यही कारण है कि वह आर्थिक प्रश्रय के स्थान पर साम्य स्थापित करने के आकांक्षी रूप में सदा सामने आते हैं। कबीरदास अपनी वाणियों और कर्म के माध्यम से सामाजिक ढांचे की विश्रृखलता दूर करने पर विशेष बल देते हैं। मानवोचित गुणों का उल्लेख करते समय दया, क्षमा उदारता, और दानशीलता आदि को रेखांकित किया जाता है कदाचित मनुष्य के यही सदव्यवहार समाज को संगठित रखने अहम भूमिका निभाते हैं। प्राचीन काल से ही संसार के अधिकांश समाज में व्यवस्था के लिए जिन

विशिष्ट नियमों और उप नियमों का पालन किया जाता है,ऐसे सार्वजनिक एवं सार्वभौमिक नियम को 'धर्म' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। यह व्यवस्था न्याय, सत्य, अहिंसा और प्रेम इत्यादि उदात्त भावों पर आधारित होती है, परंतु जब अव्यवस्था या यूँ कहा जाए कि अधर्म का प्रभाव बढ़ जाता है तब समाज में विसंगतियों का जन्म होता है कबीरदास अधर्म जनित विश्रृंखल समाज का विरोध ही नहीं करते वरन सहज एवं सत्य धर्म के स्वरूप को भी निर्दिष्ट करते हैं वह कहते हैं कि

जे मन नहीं तजे विकारा,तो क्यूँ तिरिये भो पारा
जब मन छाडे कुटिलाई,जब आई मिले राम राई

कबीर का मानना है कि जो दूसरे का दु:ख या पीड़ा अनुभव नहीं कर सकता वह संत कैसे हो सकता है। संत कबीर के अनुसार संपूर्ण संसार पंचमहाभूतों अर्थात क्षिति जल पावक गगन समीरा से बना है ब्रह्म ने एक ही चाक पर संपूर्ण संसार का निर्माण किया है सभी में एक ही ज्योति समान रूप से व्याप्त है एक ही तत्व , एक ही प्राण सभी प्राणियों में है इसलिए सभी समान हैं। वंचित कहे जाने वाले वर्ग को भेदभाव से बचाने के साथ साथ धनी वर्ग को धन के उचित उपयोग को भी समझाते हैं-

धर्म किए धन ना घटे नदी न घटे नीर,
अपनी आंखनु देख लो कहि कथय कबीर

संतों ने भारतीय धार्मिक जीवन की ऐसी प्रस्तावना तैयार की जिसके आधार पर आधुनिक भारत का निर्माण होना चाहिए। इन संत भक्त कवियों की सरलता और सादगी स्वावलंबन की शिक्षा महात्मा गांधी ने भी आदर्श रूप में अपनाई उन्होंने कबीर का चरखा लिया और उस के माध्यम से स्वाबलंबन की शिक्षा दी। चरखा जो कबीर की रोजी रोटी का जरिया था और चरखा जो उनके आध्यात्मिक अर्थ का सबसे बड़ा रूपक भी है। कबीर कहते हैं यह सृष्टि का चरखा है और ब्रह्मा रूपी जुलाहा उसे चला रहा है यदि कबीर के लिए चरखा रोजी रोटी कमाने का और स्वाबलंबन का जरिया है तो उसका आध्यात्मिक अर्थ भी विशाल है। स्वावलंबन और अध्यात्म का अद्भुत समन्वय संत कबीर हैं। कबीर का चरखा और रामचरितमानस के रामराज्य का प्रतीकार्थ लेते हुए एक आदर्श भारत का स्वप्न महात्मा गांधी ने देखा ऐसा आदर्श भारत जिसमे कोई दुखी और दीन न हो। उपभोक्तावाद और समाज में विषमता जिस तरह बढ़ी है सुविधा संपन्न वर्ग जितना व्यापक हुआ है ऐसे समय में जिसमें लालच का कोई अंत नहीं है संत कबीर की शिक्षाओं का अत्यंत महत्व है। वेक्षकर्मठता का संदेश देकर सन्यास का अर्थ बदल देते हैं । कबीर का जीवन आदर्श सन्यासी का जीवन है उन्होंने बताया कि परिवार के साथ रहते हुए श्रम करते हुए चरखा चलाते हुए भी सन्यासी हुआ जा सकता है। सच्चे संत का धर्म समाज का कल्याण करना और समरसता लाना है।

कबीर दो विलक्षण काम करते हैं एक तो ग्राहस्थ संन्यास की नींव डालते हैं दूसरा श्रमशील सन्यासी का आदर्श स्थापित करते हैं। कबीरदास के अनुसार सन्यास का मतलब दूसरों पर निर्भर होना नहीं, संन्यास का अर्थ है खुद परिश्रम कर अपने परिवार का पेट भरना एवं दूसरों की सहायता करना। कबीर जैसे कर्मठता का सन्देश प्रसारित करने वाले संतों का उद्भव इसीलिए संभव हुआ की दस्तकारी के बहुत सारे औजार मध्य काल में आए। चरखा कबीर के काल में आया रहट भी इसी काल की देन है। यह जो छोटे-छोटे उत्पादन के औजार आए इनसे सभी पिछड़ी जातियों को ऊपर आने का मौका मिला। यह सर्वविदित है कि नई तकनीकी आती है तब नए मानवीय संबंधों का जन्म होता है। नई तकनीक के कारण मध्यकाल में धुनिया, जुलाहा, चर्मकार, नाई, आदि दस्तकार जातियों का आर्थिक स्वावलंबन संभव हुआ। आर्थिक आधार यदि कमजोर है तो यह वर्ग सर नहीं उठा सकते थे। कबीर ब्राह्मणवाद और पुरातनवाद के घर में रहते हैं और रूढ़ियों की आलोचना करते हैं इसका आधार उनका आर्थिक स्वावलंबन है जिसे उन्होंने चरखे के जरिए प्राप्त किया।

राजकिशोर के अनुसार कबीर की किवदंतिओं में निर्धन एवं असहायों की विचारधारा अभिव्यक्त होती है न कि धनी एवं प्रभुत्वशालियों की(सं. राजकिशोर , कबीर की खोज पृष्ठ 34)। कबीर का संबंध धर्म और राजनीति से नहीं वरन जनता से है जब राजनीतिक परिस्थितियां अव्यवस्थित होती हैं समाज के आचरण में उच्छ्रन्खलता आ जाती है. स्पष्ट है संत कबीर का सहज धर्म मानव कल्याण है वह सामाजिक समरसता के पोषक एवं आर्थिक समानता के समर्थक थे कबीर के काव्य में कुम्हार के चाक, मिट्टी, म्रत्भांड के व्यापक सन्दर्भ मिलते हैं

माटी सकल संसारा , बहुविधि भांडे गढे कुम्हरा (क.ग्र.पद सं .53)
यह तन कांचा कुम्भ है चोट चहुँ रिसी खाई (क.ग्र.साखी 12/38)
पका कलसी कुम्हार का, बहुरि न चढ़ई चाकि
कुम्हरा है करि बासन धारिहूं,धोबी है मल धोऊ।
चमरा ह्वे करि रंगौ अघोरी, जाती पांति कुल खोऊँ।। (क.ग्र .पद सं .389)

लोहे की कारीगरी का विस्तृत विवरण कबीर की रचनाओं में मिलता है लोहे के अस्त्र शस्त्र तथा अन्य वस्तुएं कुशलता से निर्मित की जाती थीं। भट्टी में तपाकर तथा ठोंक पीटकर लुहार ऐसा आकर देता था की संधि दिखाई ही नहीं देती।

ज्यूँ मन मेरा तुझ सौं योंजे तेरा होई।
ताता लोहा यों मिले, संधि न लखई कोई।। (क.ग्र.साखी 56/7)

लुहार कोयला जलाकर अपनी भट्टी को गरम करता है इस क्रिया का वर्णन कबीरदास ने लुहार की भट्टी को काल के रूप में किया है -

दौ की दाधी लकड़ी, ठाढ़ी करे पुकार।
मति बसि पड़ो लुहार कै, जालै दूजी बार (क.ग्र .साखी 46 /10)

स्वर्णकार की जाति अपने कला कौशल के लिए मध्यकाल में विशेष ख्याति प्राप्त कर चुकी थी स्वर्ण के जड़ाऊ आभूषण और नक्काशकारी के आभूषण उस युग में संपन्न वर्ग को विशेष प्रिय थे। कबीरदास ने तत्कालीन स्वर्णकारी के व्यवसाय में प्रयुक्त उपकरणों का चित्रांकन अपने साहित्य में किया है यथा -स्वर्णकार सोने को अग्नि में तपा-तपाकर अपनी कारीगरी से उसे शुद्ध बना देता है की वह कसौटी पर खरा उतरता है

कसणी दे कंचन किया ,ताइ लिया ततसार (क.ग्र .साखी1/28)

स्वर्ण निर्मित आभूषण पिघलाकर स्वर्ण में परिवर्तित किये जाते थे

जैसे बहुकंचन के भूषण ,ये कहि गालि तवांवहि (क.ग्र .पद संख्या 150)

प्रभुमिलन की सुखद अनुभूति का वर्णन करते हुए कबीरदास ने स्वयं को

जौहरी के रूप में प्रस्तुत किया है –

अमृत बरसे हीरा निपजै, घंटा पड़े टकसाल

कबीर जुलाहा भया पारषु, अनभै उतरे पार (क.ग्र .साखी 5/47)

टकसाल में धातु के सिक्के ढालने का कार्य किया जाता था

भारतवर्ष में उपवन एवं वाटिकाएँ अत्यंत प्राचीन काल से रही हैं। कबीर ने माली को परमात्मा ,सर्जक के रूप में स्वीकार किया है जो जगत रुपी उपवन की देखभाल करता है और अवसर आने पर वह माली के समान प्राणी रुपी पुष्पों को चुन भी लेता है। माली के साथ मालिन का भी उल्लेख अपनी बानी में किया है। वह फूलों के कार्य में अपने पति की सहयोगिनी है ,सहधर्मिणी है। वह देवपूजा के लिए पुष्प और पत्ते चुनने का कार्य करती है। माली की जीविकोपार्जन का साधन उपवन की देखरेख व पुष्प पत्र आदि प्रदान करना था जिसके बदले उन्हें अनाज ,वस्त्र एवं कभी-कभी मुद्राएँ भी मिलती थीं।

'माली आवत देखि कर कलियन करि पुकार'

कबीर स्वयं जन थे अत: उनके पास जन व्यक्तित्व था वह जननायक बन जन के पास नहीं गये थे आम जीवन ही उनकी अपार जनशक्ति का आधार था। सबसे बड़ी बात उन्हें अपने आमजन होने का गर्व था कहीं भी आत्महीनता का भाव नहीं था वरन महाप्राणता का औदात्य था जीवन का विष पिया था इसीलिए वह बहुत संवेदनशील हो गए थे उनका पर दुखकातर मन अथाह जन समुद्र में सहज ही घुलमिल जाता था और पीड़ा से उनकी वाणी कह उठती–

हेरत हेरत हे सखी रहा कबीर की हिराई

बूँद समाना संमंद में सोकत हेरा जाई

इसलिए वह साधारण जुलाहा भारत की अस्मिता का प्रतीक बन गया । एक साधारण जन बनकर जन का जीवन जीकर कामगार के रूप में जीविका उपार्जन कर जो क्रांति की उसमें एक विशाल आत्मा के दर्शन होते हैं। कबीर महामना थे उनके व्यक्तित्व की दिगंत प्रसारी शक्तियों का समग्र वर्णन नही हो सकता केवल उन्हें अद्भुत कहा जा सकता है। वनवासियों और आदिवासियों के साथ उनका संबंध जन्म जन्मांतर का था इसलिए वह जाने अनजाने में उनके होकर रह गए थे सभी प्रकार की विषमताओं को समाप्त करने और एक न्यायोचित संतुलित व्यवस्था को कायम करने के उद्देश्य से कबीरा जीवन संघर्ष करते रहे समानता किस पर होनी चाहिए सामाजिक धार्मिक आर्थिक राजनैतिक आदि इसी समानता की स्थापना के लिए कबीर अपना साम्यवाद देते हैं जो प्लेटो के साम्यवाद और मार्क्स के साम्यवाद से सर्वथा भिन्न है।

उदर समाता अन्न ले तनहि समाता चीर

अधिकहिं संग्रह ना करै ताको नाम फकीर

लोकजीवन की समाज व्यवस्था में सामूहिकता एवं रागात्मकता का ऐसा ताना-बाना है कि वे समूह में जीवन यापन पसंद करते हैं इनकी अर्थव्यवस्था का आधार सहकारिता है। पर्यावरण के दोहन पर नहीं उसमें आजीविका पालन में विश्वास रखते हैं उनमें लाभ अर्जित करने की परंपरा नहीं रहती वे संग्रह और लोभ से दूर रहते हैं–

साईं इतना दीजिए जा मे कुटुंब समाय

मैं भी भूखा ना रहूं साधु न भूखा जाए

लोकजीवन की मूल पारंपरिक अर्थव्यवस्था कबीर की इसी मूल विचार के समीप स्थापित है। आर्थिक संग्रहण से दूर रहते हैं उनकी आर्थिक नीति निजी आवश्यकताओं तक ही सीमित है जहां साधु के दायित्व की बारी आती है इसे भी वे सामाजिक रूप से पूरा करते हैं अर्थात उनकी आवश्यकता से अधिक संग्रहण पर सीधे रूप में अंकुश लगाती है इनकी अर्थव्यवस्था साम्यवादी अर्थव्यवस्था के अनुरूप है। कबीर की आत्म तुष्टिपरक जीवन नीति लोक समाज की व्यवस्था का आधार है।

श्रम का महत्व

संत कबीर के संपूर्ण काव्य में मानव कल्याण की भावना दृष्टिगोचर होती है उन्होंने प्रभु भक्ति के साथ कर्म करने पर भी विशेष बल दिया है कबीर कहते हैं कि मनुष्य को प्रभु भक्ति के साथ साथ जीविकोपार्जन के लिए परिश्रम भी करना चाहिए प्रभु की भक्ति जंगल में जाकर तपस्या करने या भूखे रहकर नहीं की जा सकती अत: कबीर के अनुसार मनुष्य को कर्म प्रधान बनना चाहिए। कबीर स्वयं कर्म योगी थे जो जीवन पर्यंत परिश्रम द्वारा जीविकोपार्जन करते थे। वह प्रभु का स्मरण करते हुए भी काम करने का संदेश देते हैं । स्वाबलंबन मितव्ययिता एवं परिश्रम से हम जीवन को सही दिशा दे सकते हैं जिससे स्वस्थ समाज का निर्माण होगा। परमात्मा के साथ उनका आत्मीय संबंध है एक पुत्र की तरह अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रभु से मांग करते हैं कि–

दुई सेर मांगउ चूना, पाव घीऊसंग लूना

अध सेरु मांगउ दाले, मोकऊ दोनउ बखत जिवाले

(कबीर ग्रंथावली पद 307)

श्रम ही ते सब कुछ बने बिन श्रम मिले न काही

सीधी अंगुली की जमो कबहूँ निकसे नाहि

मनुष्य को लोभ की प्रकृति से दूर रहना चाहिए परजीवी परोपजीवी व परावलंबी होना अनुचित है। श्रम ही समाज की पूंजी है पुरुष, स्त्री ,बच्चे सभी को अपने अनुकूल कार्य करना चाहिए अत: श्रम विभाजन का उदाहरण लोक जीवन में देखने को मिलता है इसका परिणाम यह है कि आदिवासी गांव और समाज अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर लेते हैं। गांवों में आर्थिक साधनों का केंद्रीयकरण भी नहीं हुआ अत: आदिवासियों के द्वारा श्रम को प्रमुखता देना कबीर के साम्यवाद की छवि को पुष्ट करता है कबीर का साम्यवाद सदा से ही चली आ रही भारतीय सामाजिक आर्थिक नीतियों की अभिव्यक्ति है जिसमें संसाधनों का अकेंद्रीयकरण मिलता है यही दृष्टि गांधी जी की भी है।

लेखिका वरिष्ठ साहित्यकार हैं।
संपर्क : साधना सदन राधा कॉलोनी आनंद डेयरी के पास, गोदरेज शोरूम गली, गुना, जिला गुना(म.प्र.) 473001
मो. 9981524344

■

आलेख

निर्गुण-सगुण और कबीर

शैरिल शर्मा

मध्यकालीन साहित्यिक जगत में कबीर एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनकी रचनाओं का जितना साहित्यिक महत्व है उतना ही ऐतिहासिक महत्व भी है। दर्शन की दृष्टि से वे उतने ही आवश्यक एवं अध्यात्म में उनकी वाणी उतनी ही व्यापक साख लिए है। कबीर के काव्य ने चिंतन को नवीन दिशा दी है। कबीर शास्त्र से लोक तक की यात्रा तय करते हैं वह कागज के लिखे के साथ आंखों के दिखे को भी महत्व देते हैं **'मैं कहूं आंखन की देखी'**। उनके राम से लोकचेतना के तार जुड़े हैं। वे राम ब्रह्म, जीव, आत्मा-परमात्मा, से आगे दूल्हा-दुल्हिन, सर्वालेपा, चींटी के भी नूपूर सुनने वाले रूपकों से सुसज्जित है ताकि जनसाधारण उसे सहज ही आत्मसात कर सके अर्थात उनका दर्शन लोकोन्मुख है। निर्गुण के साक्ष्य निसंदेह वैदिक काल में भी निहित है पर भक्तिकाल में हम साधना के इस पथ को सधते स्पष्ट रूप से देखते हैं। नारद जी भक्तिसूत्र में कहते हैं 'अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपं' भक्तिकाल में यही अनुभव सर्व प्रथम गुरु नानक देव को हुआ कि ब्रह्म अनुभूति का विषय है और सर्वदा अनिर्वचनीय है। ऐसा भी नहीं है निर्गुण धारा में सगुणत्व बहुत निकट न हो इसमें अनूप की रूपानुभूति वर्णित है और आगे यही परंपरा सींगा,पीपा, गरीबदास,दादू, सुंदर दास, पलटू, अक्षर अनन्य, सदना, सहजों आदि से संबद्ध हो गई । इतना ही नहीं वृंदावनी रसोपासना तो कभी कभी सगुण-निर्गुण के मध्य की रेख पर खड़ी प्रतीत होती है। ऐसी मान्यता है कि ब्रह्म यों तो अरूप अदृश्य, अगोचर अर्थात इंद्रियातीत है मन, वाणी, कर्म आदि से परे है किंतु लोककल्याण हेतु वह यदा-कदा माया की सहायता से अवतार धारण कर विशिष्ट लीलाएँ करता है और जो भक्त इस रूप में उनका ध्यान करते हैं, उन्हें अपना साहचर्य प्रदान करता है। इस मत से प्रेरित होकर भारतीय उपासना पद्धति में सगुणोपासना का प्रचलन हुआ किंतु कालांतर में यह अनुभव किया गया कि परब्रह्म-परमात्मा इन गुणों तक सीमित नहीं है। वह गुणातीत है, उसका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं। तात्पर्य यह कि सगुण की प्रतिक्रिया में यह निर्गुण मत उत्तर भारत में पूर्णत: स्थापित हो गया।

योग, वेदांत, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक – इन सबके अनुसार तो ब्रह्म 'नेति-नेति' हैं ही किंतु जब भक्ति का आंदोलन प्रवर्तित हुआ तो वेदांत के ब्रह्मसूत्र के अनुसार आचार्यों ने उसे द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि रूपों में विभाजित कर दिया। हिंदी संत कवियों ने यह अनुभव किया कि निर्गुण-सगुण का पृथक विभाजन सर्वथा समीचीन नहीं है। कबीर स्पष्ट घोषित करते हैं-'गुन में निरगुन, निरगुन में गुन, बाँट छाँडि क्यों रहिए'। ऐसी मान्यताएं रामोपासना, कृष्णोपासना एवं सिख समुदाय में भी रही है गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते है – 'हिय निरगुन, नयनहिं सगुन'; सूर एक पद में गुनगुना रहें है – 'वेद उपनिषद जासु को निरगुनहिं बतावै, सोई सगुन है नंद की दाँवरी बँधावै'। सिख गुरू अर्जुन देव के शब्द है – 'निरंकार आकार आदि निरगुन सरगुन एक' इन

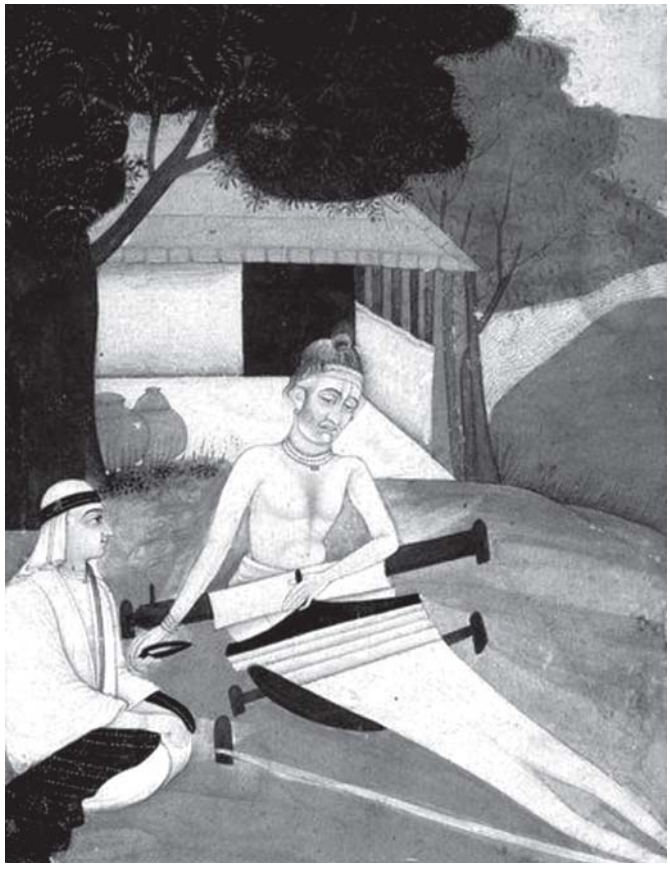

उदाहरणों से हम कह सकते हैं कि संत काव्य, सूफी काव्य, राम-कृष्ण काव्य, और राम-कृष्णेतर भक्ति काव्य में सगुण निर्गुण का यह विकास तकरीबन सात शताब्दियों से अपनी गति पर है। पंडित परशुराम चतुर्वेदी ने 'उत्तर भारत की संत परंपरा' शीर्षक में संत संप्रदायों का जो विवेचन किया और यह कहा कि तत्वत: वे निर्गुणवादी हैं और साधनात्मक स्तर पर वे सगुणवादी है। आचार्य रामानंद एक ओर निर्गुण ब्रह्म की निराकारता, सर्वव्यापकता, अनुभूतिगम्यता की पुष्टि करते हैं तो दूसरी ओर नवधाभक्ति का नवरंगी परचम और षोडशोपचार का विधान स्थापित भी करते हैं । तुलसी और कबीर दोनों एक ही परंपरा से आते हैं तुलसी कहते हैं **'सियाराम मय सब जग जानी'** वहीं दूसरी ओर कबीर कहते हैं **'सब घट मेरा साइया'** अर्थात निष्कर्ष यह है कि बह्म सर्वरूप है और भक्ति भक्त को अधिकार देती है कि वो उसे भावानुकूल कल्पित कर सके। जब वह कण-कण में व्याप्त है तो अरूप होते हुए भी अरूप कहां और कैसे? यह चिंतन परंपरा भक्ति आंदोलन के साथ प्रारंभ हो गई और किसी न किसी रूप में वह अविद्यावधि वर्तमान है। कबीर महत्वपूर्ण इसलिए हैं क्योंकि वे लोकमानस को 'अनभै साँच' के रूप में एक नवीन विमर्श देते हैं। गांव देहातों में बस्तीयों में बने कामचलाऊ 'चौरो' (उदाहरणार्थ 'कबीर चौरा') ने पुरोहित वर्ग को चुनौती दी, पुराणों से इतर सहानुभूति को वरियता दी और उपासना को एक नवीन लीक दी जिसमें रहस्य चेतना का संचार हुआ और इसकी जड़ें भारतवर्ष में इतनी गहनता से स्थापित हुई कि विश्वकवि रवींद्रनाथ टैगोर को भी कबीर की साखियों का अनुवाद करने की प्रेरणा हुई और यहीं से गीतांजलि की पृष्ठभूमि तैयार हुई। आज स्थिति यह है कि 'निर्गुण को सगुण का पूरक दर्शन स्वीकार कर लिया गया है'। इस ही तरह भक्ति आंदोलन लोकोन्मुख हुआ। कबीर ने एक ओर लोक संस्कृति को अपनाया, दलित चेतना को स्वर दिया वहीं दूसरी ओर यथार्थ को चित्रित करते हुए जनदर्शन की नींव रखी। कबीर जहां प्रबोध काव्य सृजन करते हैं वहीं गूढ़ उलटबांसियां का भी काव्य के रूप में सृजन करते हैं। इनके काव्य में आराध्य के प्रति प्रगाढ़ प्रेम है और लोक-मंगल की भावना है। भक्तिकाल के तकरीबन सभी कवि संगीत साधक भी हुए इनके पद , कजरी, सोरठा, सोहर , ब्याहुला आदि छंद लोक में दैनिक चर्या का अंग हुए। यही कबीर के शब्दों में सबद साधना है जो सगुण निर्गुण का एकीकरण करती है। कबीर के राम वेदांत के बह्म हैं, विश्व से परे भी है विश्व में व्याप्त भी हैं।

'गुन में निरगुन, निरगुन में गुन, बाँट छाँड़ि क्यों रहिए।
अजर-अमर कहै सब कोई, अलख न कथणाँ जाई।
जाति-सरूप बरन नहिं जाके, घटि-घटि रह्या समाई ।।
प्यण्ड ब्रह्मांड कहै सब कोई, आदि अंत ना होई।
प्यण्ड ब्रह्मांड छाँड़ि से कहिए, कहै कबीर हरि सोई।।'

इन्होंने अथातो ब्रह्म जिज्ञासा से प्रेरित होकर पोथी ज्ञान से ऊपर आत्मज्ञान को रखा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कबीर उभयपक्षीय साधक है एक ओर उनके राम पूरे निर्गुण, निराकार, सहज , अलख है तो दूसरी और वे राम की बहुरिया है। राम उनके पीउ है जनक है।

'हरि मोर पीव मैं राम की बहुरिया।'
'हरि जननी मैं बालक तोरा।'

कबीर यह मानते हैं कि ब्रह्म मात्र अनुभूति का विषय है, सर्वथा अभिव्यक्ति से परे है। किंतु लौकिक प्रयोजन से वह भक्ति से द्रवित होकर सगुण भी बन जाता है। वह सृष्टि रूप में अपना विस्तार कर लेते है और सबमें समा जाते हैं।

'सबमें आप, आप सबहिन में, आप आपसुँ खेलै।
नाना भाँति घड़े सब भांड़े, रूप धरे धरि मेलै ।
सोच-बिचारि सबै जग देख्या, निरगुण कोई न बतावै।
कहैं कबीर गुणी अरु पंडित, मिलि लीला जस गावै ।।'

उपनिषदों में कहा गया है **'तदेजति तन्नैजति, तद्दूरे तदन्तिके'** - अर्थात् वह परमतत्व स्थिर भी है, गतिशील भी है, निकट भी है और अपरम्पार भी है। यह परमात्मा ही विश्वप्रपंच का सृष्टिकर्ता है इसलिए उसके अंतर्मन में कर्तृत्वशक्ति तथा लौकिक गुण वृत्ति का अनिवार्यत: समावेश हो जाता है। उसी प्रकार जैसे भ्रुण को धारण करके जननी एक रूप का सृजन करती है। दूसरी ओर कबीर यह भी मानते हैं कि यह ब्रह्म अनेक अंतर्विरोधी गुणों से युक्त है। वह कुछ नहीं और सब कुछ है। वह बिना मुख के खाता है, बिना चरणों के चलता है और बिना जिह्वा के गाता है-'बिनु मुख खाइ चरन बिनु चालै, बिन जिभ्या गुण गावै'। तात्पर्य यह है कि औपनिषदिक दर्शन से लेकर भक्तिकाल तक ब्रह्म के इसी उभयात्मक स्वरूप का दर्शन-दिग्दर्शन किया जाता रहा है। कबीर का निर्गुण निरंजन ब्रह्म न शून्य है और न अनात्म। वह एक भावात्मक सत्ता है जिसे कबीर ने परमदयालु, भक्तवत्सल तथा करुणामय कहा है। वह बहुत परदु:खकातर है। निर्गुण होते हुए भी वह अनंत गुणों का सागर है। कबीर तो स्पष्ट कहते हैं-

'सात समंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
औ धरती सब कागज करौं, तउ हरि गुन लिखा न जाय।'

संपर्क -1035 शिवाजीनगर, महामाया मंदिर
के पास, पिलखुवा 245304 (जिला हापुड़)
मो. 8057159554, sherilsharma97@gmail.com

■

आलेख

कबीरदास के चिंतन की वर्तमान में प्रासंगिकता

डा. रंजना जैन

कबीर एक अद्भुत संत थे। उन्होंने अपने समय में साहसिक और सटीक विचार प्रस्तुत किये। इनका जन्म 15वीं शताब्दी में हुआ था। वह भक्ति आंदोलन के प्रमुख संतों में से एक थे। उन्होंने अपने समय के और साथ ही भविष्य में आने वाले समय के लोगों को भी गहराई से प्रभावित किया। कबीर ने जो सत्य एवं प्रेम की बातें कहीं हैं. वे समय से परे हैं। कबीर का जीवन इस बात का उदाहरण है कि कैसे एक व्यक्ति पूर्णतया स्वतंत्र और जागरूक होकर जीवन जी सकता है। उनके दोहों और शिक्षाओं में सच्चे आध्यात्मिक संत के दर्शन होते हैं। वह अपने विचारों को बड़ी ही सरलता और स्पष्टता के साथ व्यक्त करते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में अन्य अनेक प्राचीन रचनाकारों के समान, कबीर का साहित्य कभी भी अप्रासंगिक और प्रभावहीन नहीं हो सकता। आज की विघटनकारी विचारधाराओं और सामाजिक उठापटक के दौर में उनकी वाणी और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है। कबीर की वाणी में दिखावटी धर्म से विद्रोह और वास्तविक धर्म के प्रचार का क्रांतिकारी पहलू उजागर होता है।

लगभग 300 वर्षों से भी ज्यादा समय तक चले मध्यकालीन भक्ति आंदोलन में भक्ति की जो धाराएं प्रवाहित हुई उनमें निर्गुण भक्ति का अपना विशिष्ट सौंदर्य है। कबीर निर्गुण परंपरा के प्रमुख आधार स्तंभ हैं। इन्होंने निर्गुण पंथ के द्वारा सहज भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया जिसमें वर्ण, धर्म, जाति और संप्रदाय का कोई महत्व नहीं था। कबीर ने मानवों के बीच स्वाभाविक प्रेम-पूर्ण संबंधों को स्वीकार किया और उसके रास्ते में आने वाले समस्त शास्त्रीय ग्रंथों और पोथियों के ज्ञान को पूर्णत: अस्वीकार कर दिया। उन्होंने सारे धार्मिक मतवादों, साधना-पद्धतियों, उपासना-मार्गों, कर्मकांडों और बाह्य-आडम्बरों का खंडन कर आत्मचेतना, आत्मतत्व, अंत: साक्षात्कार, मनुष्य की आत्मा की निर्मलता और मानवीय सद्भाव की संस्था को नए लोक धर्म के रूप में स्वीकार किया।

कबीर का धार्मिक दर्शन अद्वैतवादी था जो सभी जीवों के अस्तित्व की एकता पर जोर देता है। उन्होंने बाहरी अनुष्ठानों के बजाय आत्मज्ञान और ध्यान के माध्यम से इस एकता की प्रत्यक्ष प्राप्ति की वकालत की। सभी धर्मों, सभी पंथों, सभी मत मतांतरों को खारिज कर वे एक तत्व पर जोर दे रहे थे, जिसे कुछ विद्वान एकेश्वरवाद के नाम से जानते हैं। कबीर निर्गुण ईश्वर, अज्ञात परमसत्ता या सृष्टि के रचयिता ब्रह्म के अस्तित्व में विश्वास करते हैं। डॉ0 रामकुमार वर्मा की दृष्टि में ''कबीर ने धर्म और जीवन में कोई भेद नहीं रहने दिया। जीवन की सात्विक अभिव्यक्ति ही धर्म का सोपान है। जिस धर्म के लिए जीवन की स्वाभाविक और सात्विक गति एवं मति में परिवर्तन करना पड़े, उसे हम धर्म की संज्ञा नहीं दे सकते हैं। (हिंदी साहित्य (द्वितीय खंड) संपादक धीरेंद्र वर्मा एवं बृजेश्वर वर्मा, पृष्ठ-212) कबीर की काव्य रचना में परमतत्व, जीव, माया, सृष्टि आदि पर विचार अवश्य ही व्यक्त किए गए हैं पर यह विचार उनके स्वयं के अनुभव से उत्पन्न ज्ञानकण के रूप में है।

कबीर की विचार चेतना और प्रासंगिकता के अध्ययन का जहां तक प्रश्न है तो किसी भी रचनाकार की विचार चेतना का उद्भव और विकास किसी विशिष्ट ऐतिहासिक परिस्थिति के कारण ही होता है। कबीर युग-संधि के उस काल में उत्पन्न हुए थे जब भिन्न-भिन्न धर्म साधनाओं और सामाजिक विचार प्रवृत्तियों के बीच अंतिम टकराहट का सिलसिला शुरू हो गया था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'कबीर युग संधि के ऐसे ही चौराहे पर उत्पन्न हुए थे। वह मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे। वह हिंदू होकर भी हिंदू नहीं थे। वे साधु होकर भी योगी (अगृहस्थ) नहीं थे, वैष्णव होकर के भी वैष्णव नहीं थे। वह योगी होकर भी योगी नहीं थे। वह कुछ भगवान की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर के भेजे गए थे। वे भगवान के नृसिंहअवतार की मानो प्रतिमूर्ति थे।'

(हिंदी साहित्य: उसका उद्भव और विकास, पृष्ठ 77)

कबीर अपने युग के प्रगतिशील विचारक और समाज सुधारक थे। उन्होंने किसी भी विचारधारा या दर्शन का अंधानुकरण नहीं किया। वे वैदिक संस्कृति से इतर यथार्थवादी दृष्टा एवं रचनाकार थे। कबीर अनपढ़ थे किंतु उन्होंने जगत को अपनी खुली आंखों से देखा और समझा। वह कहते हैं कि **'मैं कहता हौं आंखिन देखी। तू कहता कागद की लेखी।'**

कबीर की 'वाणी' में जीवन के अनुभवों से प्राप्त सत्य का साक्षात्कार होता है। यही कारण है कि मध्यकाल को लगभग छ:सौ वर्ष बीत जाने के उपरांत भी कबीर की 'वाणी' आज भी प्रासंगिक है। विभिन्न जातियों, धर्मों, वर्गों आदि में विभाजित समाज की संकटग्रस्तता के समय कबीर का साहित्य और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है। कथ्य और सांकेतिक व्यंजनाओं के कारण कबीर की वाणी आज के पाठकों को समकालीन जीवन के बदले हुए संदर्भ में उतनी ही उद्वेलित करती है, झकझोरती है, जितनी मध्यकालीन यथार्थ बोध के संदर्भ में करती थी।

कबीर ने मध्यकालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों और अन्याय के खिलाफ आवाज बुलंद की। उन्होंने जाति-पांति, ऊंच-नीच, धार्मिक कट्टरता एवं भेद-भाव के खिलाफ अपने दोहों और भजनों के माध्यम से आवाज उठाई। जाति प्रथा, सामाजिक भेदभाव, धार्मिक कर्मकांड, मूर्ति-

पूजा, बाह्य-आडंबर, छुआछूत, यज्ञ, वेद, पुराण, पंडित, पुरोहित, अंधविश्वास, बाह्य आडंबर, तीर्थाटन आदि की तीखी आलोचना एक बहुत व्यवस्थित एवं वैचारिक सांचे में कबीर ने की है। इन पर जितनी चोट कबीर ने की है. उतनी मध्यकालीन किसी भी रचनाकार ने करने की हिम्मत नहीं की। वर्णाश्रम व्यवस्था, अंधविश्वास, बाह्य आडंबर, तीर्थाटन आदि के खंडन में कबीर की वाणियों की तार्किक प्रखरता कविता को भी जीवंत बनाती है।

बोधगन्य और लोकग्राह्य, सादृश्य-विधान से भरी पूरी, सहज-सरल अभिव्यक्ति इन वाणियों की खास विशेषता है।

'जाति-पांति पूछे नहीं कोई। हरि को भजे सो हरि को होई।'

कबीर धर्म को एक व्यक्तिगत अनुभव मानते हैं और संकीर्णता के लिए उनके पास कोई स्थान नहीं है। धर्म को वह कोई सामाजिक बंधन नहीं मानते हैं। कबीर ने अपनी शिक्षाओं में भी इस दृष्टिकोण को अपनाया-

मोको कहां ढूंढे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल, ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलाश में।
ना तो कौने क्रियाकर्म में, नहीं योग बैराग में।
खोजी होय तो तुरते मिलिहौं पल भर की तलाश में ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब श्वांसों की श्वांस में।

अर्थात परमतत्व किसी मंदिर में नहीं, किसी मस्जिद में नहीं, किसी तीर्थ में नहीं, बल्कि हमारे इसी घट यानि कि शरीर के अंदर है।

उनके दोहे संक्षिप्त होने के बावजूद भी गहरी आध्यात्मिकता और सत्य का संदेश देते हैं। कबीर की वाणियो में दिखावटी धर्म से विद्रोह और वास्तविक धर्म के प्रचार का क्रांतिकारी पहलू उजागर होता है। उन्होंने मध्य-युग के मनुष्य को आत्मप्रतिष्ठा, आत्मसम्मान और आत्मविश्वास दिया और साथ ही उन्हें आपस में प्रेम करना भी सिखाया। उन्होंने 'प्रेमभक्ति' के सर्वथा नए स्वरूप की कल्पना की और ज्ञान, योग और भक्ति की सम्मिलित भूमि पर अलग प्रकार के पंथ एवं साधना मार्ग को खोजा। उनके विचारों में प्रेम का बहुत बड़ा महत्व था क्योंकि वह प्रेम को ही ईश्वर की प्राप्ति का सबसे सरल और सच्चा मार्ग मानते थे। उनका प्रेम केवल मानव तक ही सीमित नहीं था बल्कि यह संपूर्ण सृष्टि के प्रति था। कबीर ने प्रेम को एक सार्वभौमिक भावना के रूप में देखा जो सभी विभाजनों और सीमाओं से परे है। उन्होंने प्रेम को एक दिव्य अनुभव माना और कहा कि यही व्यक्ति को उसकी वास्तविकता से जोड़ता है। कबीर ने प्रेम को सबसे उच्चतम मूल्य माना और उसे ईश्वर का स्वरूप कहा। उनका प्रेम सार्वभौमिक था, जो किसी भी सीमा और बंधन से परे था। उनका प्रेम का संदेश हमें एक सच्चे और सार्थक जीवन के लिए निर्देशित करता है।

पोथी पढि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया ना कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।

कबीर के इस दोहे में गहरा सत्य छिपा है जो यह बताता है कि शिक्षा केवल बौद्धिक नहीं होती है बल्कि अनुभवजन्य होती है। प्रेम के ढाई अक्षर में जो सत्य है, वह व्यक्ति को सच्चा पंडित बना सकता है। वास्तव में कबीर ने शिक्षा की सतही परत को खारिज किया और उसे केवल किताबों तक ही सीमित नहीं रहने दिया, बल्कि उन्होंने वास्तविक शिक्षा को प्रेम और अनुभव के माध्यम से समझाया।

कबीर की भाषा बड़ी ही सरल और प्रभावशाली है। वे आम लोगों की भाषा में बात करते हैं ताकि उनके संदेश को आसानी से समझा जा सके। कबीर की इस सरलता और स्पष्टता की वजह से उनकी वाणी में छुपे हुए आक्षेप को हर काल में उन धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों पर तीखे प्रहार के रूप में समझा जा सकता है जो मानवता को विभाजित करती हैं। उनकी वाणी इतनी राजीव और वास्तविक है कि वह सीधे हृदय को छूती है, क्योंकि उन्होंने जो कहा वह केवल शब्द नहीं थे बल्कि उनके अनुभवों की सजीव अभिव्यक्ति थी। वे एक सच्चे समाज सुधारक थे, जिन्होंने अपने शब्दों को समाज में बदलाव लाने के लिए इस्तेमाल किया। अपने समय के हिसाब से कबीर ने जो कहा वह एक बहुत साहसिक एवं अद्वितीय काम था। उन्होंने समाज को जागरूक करने के लिए अपने जीवन को भी दाव पर लगाया और हमेशा सच्चाई और न्याय के मार्ग पर चलते रहे। उनके समाज सुधार के इस दृष्टिकोण को वर्तमान समय में भी अपनाने की आवश्यकता है।

उनके विचार और शिक्षा आज के समय में भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने उनके समय में थे। वह आज भी हमें प्रेरित करते हैं। उन्होंने जो सच्चाई, प्रेम और धर्म का संदेश दिया वह हमें आत्मज्ञान और आत्म साक्षात्कार की ओर ले जाता है। उन्होंने बताया कि सच्ची आध्यात्मिकता किसी बाहरी आडंबर में नहीं बल्कि हमारे भीतर की गहराई में छिपी होती है। सच्चा धर्म और सच्चा प्रेम वही है जो हमें हमारे वास्तविक स्वरूप से जोड़े और हमें आत्मज्ञान की दिशा में ले जाए। कबीर एक अनूठे दर्शक, एक अद्वितीय संत और एक अद्वितीय धार्मिक सिद्धांतों के प्रवक्ता के रूप में सर्वकालिक रूप से महान है और सर्वथा, सदैव प्रासंगिक है। उनकी कविताएं, दोहे और भजन भक्ति के रूप में लोकप्रिय हुए और उन्हें आज भी आदर्श माना जाता है। उन्होंने भक्ति के माध्यम से मानवता को एक साथ लाने का प्रयास किया तथा धर्म की सीमाओं को पार करके एक ऐसे उच्च आदर्श की प्रेरणा दी जिसमें सभी मनुष्यों को समानता के आधार पर देखा जा सके।

कबीर धर्म, ज्ञान और विवेक के माध्यम से मानवता के अंतर्निहित दुखों को दूर करने की कोशिश करते हैं। अपने संदेश को वह अपनी कविताओं और दोहों के माध्यम से जन-जन तक पहुंचाते हैं। उनके विचार उनके समय के सामाजिक परिवेश को समझाने में मददगार होते हैं। उनकी वाणी केवल काव्यात्मक नहीं है बल्कि गहरे आत्मज्ञान और अनुभव का प्रतिफल है। उनकी वाणी उनके आत्म साक्षात्कार का परिणाम है और वह सीधे दिल में उतरती है क्योंकि वह कबीर के हृदय से निकली हुई है। उनकी 'वाणी' की भाषा और शिल्प भी अत्यंत सराहनीय हैं क्योंकि उन्होंने अपनी 'वाणी' में साधारण और सामान्य भाषा का उपयोग किया जिससे कि उनकी 'वाणी' सामान्य जनता तक पहुंच सके। उन्होंने लोक-जीवन और दैनिक जीवन की घटनाओं और वस्तुओं का सुंदर और सार्थक चित्रण अपनी 'वाणी' में किया है जो की अत्यंत सरल भाषा में है और सामान्य से सामान्य मनुष्य को प्रभावित करता है।

कबीर ने धार्मिक हठधर्मिता की सीमाओं का उल्लंघन किया। वे

एक विद्रोही रहस्यवादी थे जिन्होंने पारंपरिक धार्मिक विश्वासों और अनुष्ठानों को नकारा तथा धार्मिक सिद्धांतों के प्रति अंधश्रद्धा पर आध्यात्मिकता के प्रत्यक्ष, व्यक्तिगत अनुभव की वकालत की।

कबीर वैदिक संस्कृति के चौखटे के बाहर के यथार्थवादी रचनाकार थे। उन्होंने अपने समय के सामाजिक, आर्थिक यथार्थ की टकराहटों और विसंगतियों की आदर्शवादी अभिव्यक्ति की है। कबीर ने शास्त्रीय ग्रंथों और पोथियों के ज्ञान को पूर्णत: अस्वीकार कर दिया था। कबीर की भक्ति में सभी मनुष्यों के लिए समानता की भावना है। इसमें किसी भी कर्मकांड को स्थान नहीं दिया गया है। कबीर के यहां ईश्वर-तत्व और मानव-प्रेम दोनों अभिन्न है।

श्री रामकुमार वर्मा ने कबीर की भक्ति के विभिन्न अवयवों का विस्तार से उल्लेख करते हुए बताया है कि उससे निम्नलिखित आवश्यकताओं की पूर्ति हुई 'ब्रह्म को रूप और गुण में सीमित न करते हुए उसे प्रतीकों द्वारा मानसिक धरातल पर लाने में सफलता, प्रेम के माध्यम से आडंबर और कर्मकांड की आवश्यकता दूर करना, अशिक्षित और अर्धशिक्षित जनता के हृदय में ब्रह्म की अनुभूति उत्पन्न करने के लिए विविध संबंधों की अवतारणा और गुरु, राजा, पिता, माता, स्वामी, मित्र और पति के रूपकों के सहारे उससे निकटता स्थापित करना, सूफी मत के प्रेम-तत्व और वैष्णव धर्म के भक्ति-तत्व को मिलाकर हिंदू और मुसलमान के बीच सांप्रदायिकता को दूर करना, विश्वव्यापी प्रेम से विश्व धर्म की स्थापना करना, जिसमें वर्ग-भेद और जाति-भेद के लिए कोई स्थान नहीं है और इस प्रेम के माध्यम से आत्मसमर्पण की भावनाओं को जागृत करना, जिसमें पति-पत्नी के प्रेम की पूर्णता से रहस्यवाद की व्यवहारिक परंपरा का सूत्रपात हो।' (हिंदी साहित्य, खंड 2, पृष्ठ 215)

कबीर निर्गुण निराकार, अरूप अगोचर परमसत्ता या राम के भक्त थे। कबीर की कविताओं में निरूपित यह सर्वव्यापी अगोचर परमतत्व ही सृष्टि का कर्ता है। कबीर के निर्गुण राम कृपालु हैं, भक्तों के लिए करुणा निधान है, दुखभंजन है और प्रतिपालक हैं।

कस्तूरी कुंडल बसे, मृग ढूंढे बन मांहि।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहीं।

कबीर ने वैदिक-पौराणिक संस्कृति के सभी पहलुओं पर आक्रमण की नई अभिव्यक्ति प्रणाली का प्रवर्तन किया। दलीलों की एक अनुभवगम्य सहज लोक शैली का विकास उनके द्वारा किया गया जो कि उनकी एक सर्वोपरि विशेषता है। कथ्य और सांकेतिक व्यंजनाओं के कारण कबीर की वाणियों की समकालीन जीवन के बदले हुए संदर्भ में उतनी ही प्रभावशीलता है जितना कि मध्यकालीन यथार्थवाद के संदर्भ में रही होगी। इसीलिए कबीर के साहित्य पर कालदेवता का वश नहीं चलता और वह अपनी धूल झाड़कर हर चुनौती के नौके पर बहस के अखाड़े में मुस्तैद होकर खड़ा हो जाता है। कबीर ने जनसाधारण की सामान्य भाषा में नई विचारधारा का प्रचार किया। उन्होंने अहंकार से मुक्ति, सदाचार के पालन और इंसानी रिश्ते में आपसी प्यार की नई नैतिकता का पाठ पढ़ाया। कबीर ने धर्म और जीवन में कोई भेद नहीं रहने दिया। जीवन की सात्विक अभिव्यक्ति ही धर्म का सोपान है। जिस धर्म के लिए जीवन की स्वाभाविक और सात्विक गति एवं मति में परिवर्तन करना पड़े, उसे वह धर्म की संज्ञा नहीं देते हैं। (हिंदी साहित्य, खंड 2, संपादक धीरेंद्र वर्मा एवं बृजेश्वर वर्मा, पृष्ठ 212)

जन-साधारण की भाषा में वे नई विचारधारा का प्रचार कर रहे थे। अहंकार से मुक्ति, सदाचार के पालन और इंसानी रिश्ते में आपसी प्यार की नई नैतिकता का वे पाठ पढ़ा रहे थे। नए मानवतावाद की स्थापना के लिए यह एक अद्भुत प्रकार का आंदोलन था, जब कबीर सभी धर्मों, सभी पंथों, सभी मत-मतांतरों को खारिज करके एक नये तत्व पर जोर दे रहे थे। यह अनुभव पर आधारित नया ज्ञान था, अत: अनेक विद्वान कबीर के मत को ज्ञान मार्ग की संज्ञा भी देते हैं। पुराने ज्ञान, आडंबर और अहंकार से मुक्त होकर के ही इस नवीन तत्व को समझा जा सकता था, जाना जा सकता था। धार्मिक ग्रंथो, आडंबरों और मनुष्य के अहंकार के कारण इस तत्व पर युग-युगों से पर्दा पड़ा हुआ था।

अतीत के अनेक रचनाकारों का कृतित्व साहित्यिक इतिहास और सांस्कृतिक संग्रहालय का मृत अतीत बन चुका है, परंतु कबीर का साहित्य कभी भी अप्रासंगिक और निष्प्राण नहीं हो सकता। आज के युग में विचारधाराओं के संघर्ष एवं सामाजिक विवादों के बीच अनेक बार कबीर की वाणियों का ही सहारा लिया जाता है और उनकी उक्तियों की सार्थकता सर्वकालिक है। उनकी वाणियों के द्वारा विभिन्न संप्रदायों के लोगों के मध्य सामंजस्य बैठाने की कोशिश की जाती है। पिछले अनेको वर्षों में हिंदी समालोचना में जितने भी विवाद हुए हैं, उन सभी विवादों के केंद्रबिंदु कबीर ही रहे हैं। उनके साहित्य पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री नामवर सिंह, श्री रामकुमार वर्मा, श्री श्याम सुंदर दास, इत्यादि अनेकों महान साहित्यकारों ने महत्वपूर्ण काम किया है। कबीर का साहित्य जितना मध्यकालीन समाज में प्रासंगिक था उतना ही वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी है। उनकी कृतियों को अपने युगबोध और वर्तमान यथार्थ के अंतर्विरोधों के हर आयाम के आलोक में पढ़ना होगा।

'हमें आज भी कबीर के नेतृत्व की जरूरत है, उस रोशनी की जरूरत है जो इस संत के दिल से पैदा हुई थी। आज दुनिया आजाद हो चुकी है। विज्ञान की असाधारण प्रगति ने मनुष्य की प्रभुता को बढ़ा दिया है। उद्योगों ने अपने बाहुबल में वृद्धि कर ली है, फिर भी मनुष्य संकटग्रस्त है, दुखी है, विभिन्न वर्गों में, जातियों में, विभाजित है। उनके बीच धर्म की दीवारें खड़ी हुई है, सांप्रदायिक द्वेष है और वर्ग-संघर्ष की तलवारें खिंची हुई है। (कबीर बाणी, पृष्ठ 35, संकलनकर्ता एवं संपादक, उर्दू के प्रसिद्ध प्रगतिशील शायर अली सरदार जाफरी)

आज के आधुनिक काल में व्यक्ति की भौतिक सुविधायें एवं सुखभोग की सामग्री अत्यधिक बढ़ गई है किंतु इसके बावजूद भी उसकी प्रवृत्तियों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। कबीर ने अपने युग में जिन विसंगतियों पर प्रहार किया था, वे आज भी नौजूद हैं और कबीर के प्रहार आज भी उतने ही प्रासंगिक, सार्थक और सटीक प्रतीत होते हैं।

संपर्क : शासकीय महाविद्यालय, गढ़ा, जबलपुर
मो. 9425435500, ranjanajainjbp@gmail.com

■

आलेख

गुजरात में कबीर का प्रभाव

अनीता कोर्डे

महात्मा कबीर की पदयात्राओं का अपना महत्व रहा है। भक्तमाल और परिचई साहित्य अनेक संतों की यात्राओं और पर्चो के विषय में जानकारी देता है। संस्कृत साहित्य में भी राजाओं और कार्पटिको की तीर्थ यात्राओं के विवरण आए हैं। भक्तमाल और अन्य विवरण बताते हैं कि कबीर साहब ने सारे गुजरात प्रदेश में भ्रमण किया था और वह उपलब्धियों से भरा रहा है।

बाणभट्ट के विवरणों से मध्यकाल तक नर्मदा तट के प्रवास और साधनाओं के उल्लेख मिलते हैं। कबीर ने भी दक्षिण गुजरात में नर्मदा तट पर निवास किया था। उत्तर गुजरात में पाटण में उनके ठहरने के उल्लेख सांप्रदायिक ग्रंथों में भी मिलते हैं। कबीर स्वामी रामानंद के साथ द्वारका गये थे। कबीर ने अपने एक पद में कच्छ का उल्लेख किया है । वह निर्वाण साहब के निमंत्रण पर कबीर सूरत गये थे।

गुजरात में कबीर के आगमन, निवास तथा उनकी परंपरा के कारण गुजरात के जनजीवन पर कबीर का सम्यक् प्रभाव पड़ा है। गुजरात के अनेक विद्वानों ने इस तथ्य का समर्थन किया है। नाभादास की भक्तमाल में ऐसा संकेत भी है। गुजरात के संत-साहित्य के विद्वान डा. अंबाशंकर नागर ने लिखा है; ' कबीर गुजरात में आये थे अथवा नहीं?' यह विषय संदिग्ध एवं शंकास्पद हो सकता है, पर गुजराती समाज और साहित्य पर कबीर का जो प्रभाव पड़ा है, उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। नरसिंह मेहता से लेकर आज तक के कवियों पर कबीर का यातकिंचित प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है ।

गुजरात में कबीर के विस्तृत प्रभाव का समर्थन करते हुए स्व. श्री कनैयालाल मुन्शी ने कबीर को उपासना, उपदेश, वैराग, तथा उच्च शुद्धि की भावना का प्रवर्तक माना है। कबीर के विषय में उन्होंने लिखा है कि कबीर प्रभु को शुद्ध प्रेम देता है, बिना माधुर्य के दैन्य में तड़पन का अनुभव करता है। उनको सत्संग चाहिये । निर्मलता उनको प्रिय है; नामस्मरण श्वास एवं प्राण है। वे अवतारों को नहीं मानते । मूर्तिपूजा से उसे घृणा है। वह मात्र आत्म-शुद्धिध पर विश्वास करता है ।

कबीर के उपदेश को शंकराचार्य के मत से भिन्न द्वैतवादी सिद्ध करने का प्रयास डा. भांडारकर ने किया था, किन्तु आ. आनंदशंकर ध्रुव ने लिखा कि संस्कृत काल में निर्गुण ब्रह्म के अद्वैत का तथा ज्ञान एवं वैराग का जो उपदेश शंकराचार्य ने दिया था, जिसके फलस्वरूप वे ' प्रच्छन्न वोध ' कहलाये, वही उपदेश भाषा युग में कबीर ने दिया।

श्री दुर्गाशंकर शास्त्री ने नाम की महिमा, मूर्तिपूजा विरोध, जाति भेद, मत विरोध, मद्य-मांस-विरोध तथा गुरुमहिमा, नश्वरता, वैराग तथा हृदय- शुद्धि के समर्थन को कबीर के मत के प्रमुख तत्व माने हैं। कबीरमत के सिद्धांतों के रूप में प्रमुख जीव-शिव ऐक्य तथा ' नाम ' की प्रेममय भक्ति को माना है।

गुजराती साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री रमणलाल देसाई ने राम-रहीम ऐक्य की स्थापना तथा आचारों के खोखलेपन पर प्रहार आदि को कबीर में विकसित भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी सिद्धि माना था।

श्री कनैयालाल मुन्शी ने गुजरात में कबीर की महती प्रतिभा द्वारा हिन्दू-मुस्लिम जातियों पर पड़े प्रभाव का समर्थन किया है। किसनसिंह चावड़ा ने लिखा है कि गुजरात के निम्नवर्ग के लोगों में भक्तिभाव, सरलता, मानसिक पवित्रता तथा परोपकार आदि का दृढ प्रभाव पड़ा था। लोगों की जीवनदृष्टि को उच्च बनाने में कबीर मत का प्रभाव कुछ कम नहीं।

गुजराती के साहित्यकार श्री वाडीलाल शाह ने कबीर की हृदय मेदकता एवं स्पष्टता तथा शुद्ध हृदय, तत्वज्ञान, प्रौढ विचार तथा आत्मविश्वास को उनकी वाणी के प्रभाव का कारण माना है।

पं. दुगार्शकर शास्त्री ने लिखा है, कि नरसिंह मेहता समकालीन काशी के कबीर साहब का शब्द गुजरात मैं सुना गया है। एवं कबीर का प्रभाव गुजरात में दृष्टिगोचर होता है।। डा. निपुण पंड्या ने अपने प्रबंध 'मध्यकालीन गुजराती साहित्य में तत्व विचार' में गुजरात में कबीर के प्रभाव का समर्थन करते हुए लिखा है कि रामानंद का प्रभाव गुजरात पर पड़ा है, ऐसा मानने मैं आता है, किन्तु कबीर का प्रभाव स्पष्ट है। कवि मुकुंद ने अपनी भक्तमाल में ' कबीर चरित्र' लिखा था, इस पर से कबीर का कितना प्रभाव गुजरात मैं था, इसकी प्रतीति होती है।

संपर्क : 51, A6/15 Blue Grotto
LIC colony, Borivali west, Mumbai 400103

■

आलेख

गुरु ग्रंथ साहिब और कबीर

डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक'

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के निर्गुण ब्रह्मोंपासक और ज्ञानमार्गी संतप्रवर कबीरदास एक ऐसे रहस्यवादी कवि हुए हैं जिनकी वाणी ने तत्कालीन समाज में एक अलग ही तरह की वैचारिक क्रांति ला दी थी। उनके समय में आम आदमी बड़ी ऊहापोह की स्थिति में था। वह समझ नहीं पा रहा था कि क्या सत्य है और क्या असत्य। सगुण उपासक भक्तों के मन में यह बात घर किए जा रही थी कि वैदिक उपासना और कर्मकांड आदि कहीं निरर्थक ही तो नहीं। पूजा-पाठ, जप-तप, हवन-यज्ञादि धार्मिक कर्म-कांडों से हिंदुओं का विश्वास इसलिए भी डिगने लगा था और वे यह सोचने को विवश हो रहे थे कि जो विधर्मी हमारे मन्दिरों और भगवान के विग्रहों तक को नष्ट कर रहे हैं और हमारा सब कुछ लूट-लूट कर ले जा रहे हैं, उनका भगवान क्यों नहीं कुछ बिगाड़ पा रहे और हमारी रक्षा क्यों नहीं कर पा रहे? उल्टे, वे तो खूब मस्त पड़े हैं और हम आस्थावादी दुखी हैं। अत: उनकी आस्था डिगती जा रही थी और अवतारवाद, पूजा-पाठ, जप-तप, हवन-इत्यादि कर्मकांडों, ऊंच-नीच, छुआछूत, जात-पात आदि से भी उनका विश्वास डगमगाने लगा। यही नहीं, इन सबको न करने वाले संत कबीर हमेशा आत्मिक रूप से शान्त ही दिखते थे। अत: कबीरदास की विचारधारा समाज को प्रभावित करने लगी और आम जन ने मान लिया कि केवल और केवल आपसी प्यार और भाईचारे से रहने में ही जीवन का सार निहित है। कबीर दास ने सदैव अपने शिष्यों को आत्म-बोध की बात बताई। हिंदू, सिख, इस्लाम और विशेषकर सूफीवाद में कबीरदास का विशेष स्थान है।

'भक्तमाल' जैसे ग्रंथ में भी कबीरदास को स्थान मिला है। गुरु नानक देव भी संत कबीर के अंतिम समय में लगभग युवावस्था में ही थे। उनके उपदेशों का उन पर भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। सिख लोग मानते हैं कि गुरु नानक देव जी को युवावस्था में पंजाब की ओर एक संत के दर्शन हुए थे जिनके वचनों ने इनको अंदर तक झकझोर दिया था। सिख पंथी उन संत को कबीर दास ही मानते हैं, अन्य कोई नहीं। यही कारण है कि विदेश से चार भागों में प्रकाशित वृहद्ध ग्रंथ 'नानक चमत्कार' में भी गुरु नानक देव के बारे में लिखा है कि-

गुरु नानक देव ने संत कबीर के चिंतन से प्रभावित होकर बहुत सारी सामग्री ली। कबीरदास की जिन-जिन बातों को हिंदू धर्म ग्रहण नहीं कर पाया, गुरु नानक देव ने उनको सहज ही आत्मसात कर लिया।

उदाहरण के तौर पर कबीरदास छुआछूत, जात-पात, ऊंच-नीच, अमीर-गरीब और छोटे-बड़े का भेद न मानने की शिक्षा देते थे। कबीर ज्ञानमार्गी शाखा के होने के कारण जाति-प्रथा के घोर विरोधी थे। तभी तो उन्होंने कह दिया कि -

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान

अथवा

जात पात पूछे नहिं कोई। हरि को भजे सो हरि का होई।

छुआछूत का भी कबीर दास पुरजोर विरोध करते रहे। गुरु नानक देव जी ने इस कुरीति को गहराई से स्वीकार किया और नियम बना दिया कि गुरुद्वारे में जाकर दर्शन करने से पहले लंगर छकना आवश्यक है। ऐसा करने के पीछे उनका यही उद्देश्य था कि लंगर का भोजन चूंकि ऊंची-नीची सभी जातियों के लोग मिलकर बनाते हैं, अत: सभी पहले लंगर छककर यह प्रमाणित कर सकें कि वे ऊंच- नीच जैसी कुरीति से दूर हैं। संत कबीर दास गुरु को ईश्वर से भी अधिक महत्ता प्रदान करते हुए सर्वोपरि मानते हैं। यथा -

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, काके लागू पांय।
बलिहारी गुरु आपणे, गोबिंद दियौ बताय ।।

गुरु की महत्ता बताते हुए उन्होंने ढेरों साखियों की रचना की। कबीर दास की भांति ही गुरु नानक देव ने भी गुरु का महत्व सर्वोपरि माना। उन्होंने भी कबीर की भांति ही गुरु-महिमा का गान किया। अंतर केवल इतना ही रखा कि उन्होंने अपनी बात को पंजाबी भाषा में रखा। कबीर का ध्येय यश प्राप्ति की ओर कभी न रहने के कारण ही गुरु अर्जुन देव ने इस पवित्र ग्रंथ में अपने पूर्ववर्ती सभी गुरु साहिबान सहित अन्य संतों और महापुरुषों की वाणियों का भी संकलन किया है। बाद में दशम गुरु गोविंद सिंह जी ने अपने पिता और गुरु श्री तेगबहादुर जी की वाणी को भी इसमें सम्मिलित किया। इस ग्रंथ में कुल मिलाकर भिन्न-भिन्न समुदायों, वर्गों, क्षेत्रों, प्रांतों, संप्रदायों तथा जातियों के 36 महापुरुषों की वाणियां संकलित हैं, जिनमें कि 6 गुरु साहिबान, 15 भक्त, 11 भट्ट या भाट (गीतकार) और 4 निकटवर्ती सिख हैं। इस प्रकार सबको साथ लेकर चलने वाला यह दुनिया का इकलौता ग्रंथ है। यदि इस ग्रंथ का अध्ययन करें तो बाहरी 15 संतों की वाणियों में संत कबीरदास की वाणियों को ही सर्वाधिक स्थान मिला है। 36 महापुरुषों की ये वाणियां कुल 31 रागों में निबद्ध हैं, जिन्हें तीन भागों में बांधा गया है-

1- नितनेम की वाणी, 2- रागों में वाणी, 3- राग मुक्त वाणी

लेखक : संगीतज्ञ/कवि/लेखक/संपादक हैं
सम्पर्क- 94, 'संगीत सदन' महाविद्या कॉलोनी, द्वितीय चरण, मथुरा- 281 003 (उ.प्र.) मो. 98972 47880/88514 02815

चितेरा कबीर

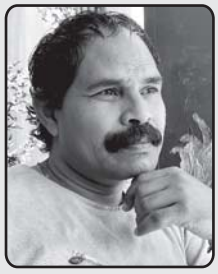

चेतन औदिच्य

समंदर में आग लगी है, नदियां जल कर कोयला हो गई हैं। अब तो कबीरा जाग जा, देख, मछलियां पेड़ पर चढ़ गई है।

कबीर

सिल्वेडोर डाली के अतियथार्थ का कबीर पंद्रहवीं सदी में ही चित्र खींच गये --

समंदर लागी आगि, नदियां जलि कोयला भई ।

देखि कबीरा जागि, मंछा रूषां चढ़ि गई ।।

कबीर के अमूर्तन की हद देखिए। जिसके सिर नहीं है। जिसका कोई रूप नहीं है। जो अरूप भी नहीं है। वो ऐसा अनुपम तत्व है जो फूलों की सुंगध से भी पतला है--

जाके मुंह माथा नहीं, ना ही रूप कुरूप।

पहुप बांस ते पातरो, ऐसो तत्त अनूप ।।

कबीर यूं तो क्रांतिचेता कवि थे। आला दर्जे के साधक थे। और दुर्धर्ष स्तर के समाजसुधारक थे। किंतु उनकी रचनाओं में एक चित्रकार की दृष्टि साफ दिखाई देती है। उनका नजरिया एक कलाकार का नजरिया है जो चीजों को ठीक वैसी देखता है, जैसा उन्हें देखा जाना चाहिए। कबीर की रचनाओं में यत्र तत्र, यही कलात्मक दृष्टि दिखाई देती है। कबीर का मूल्यांकन अनेक दृष्टियों से विद्वानों द्वारा किया गया है। यहां पर कबीर के चित्र संसार की बात की जा रही है। कबीर अपनी रचनाओं में ऐसे ऐसे

दृश्य लेकर आते हैं जो न केवल आंनदित करते हैं बल्कि अचंभित भी कर जाते हैं। कबीर अपने शब्दों से रचना की चादर पर जिस रूप-संसार को बसाते हैं, वह आह्लाद से भर देने वाला है । कबीर अपने शब्दों के माध्यम से जिन चित्रों को रखते हैं वे मूर्त से अमूर्त तक की दीर्घ यात्रा करते हैं। वहां दृश्य का सारभूत तत्व, जीवन लय का रस झराता है।

कबीर संसार को निस्सार घोषित करते हैं और उससे पार जाने की बात करते हैं। किंतु कबीर के चित्रों में जिस संसार को छोड़ने की बात की गई है उसी संसार की सर्वोत्तम सौंदर्यात्मक अभिव्यक्तियां वहां पाई जाती है। उनके रचे दृश्य, मन को झंकृत करते हैं। उनकी कलम से निकली छोटी सी छोटी वस्तु भी अपनी सुंदरता की चरम अवस्था में प्रकट होती हैं। बानगी देखिए कि ....

यह ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल।

दिन दस के व्यौहार को, झूठै रंग न भूल।।

चित्र पट पर अभाव की उपस्थिति के अपने गहरे अर्थ है । कबीर इसी अभाव को उपस्थित कर रहे हैं। उनके अनुसार आनंद की उपलब्धि के लिए पात्र होना आवश्यक है। यदि पात्रता नहीं है तो उपलब्धि संभव नहीं है। कितने सलीके से वे इस ओर इशारा करते हैं देखिए --

मन प्रतीति न प्रेम रस , ना इस तन में ढंग ।

क्या जाणौं उस पीवी सूं, कैसे रहसी रंग ।।

और इस शरीर रूपी पिंजरे में जब प्रेम घटित होता है तो जो अवस्थिति होती है उसका अनुपम चित्र देखिए कि शरीर प्यार की रोशनी से भर जाता है। भीतर ही भीतर एक ऐसा उजाला होता है जिसे दिखाया नहीं जा सकता । वह ऐसा महसूस होता है जैसे मुख पर कस्तूरी की महक गमक रही हो । और जब उस मुख से बोल निकलते हैं तो मानो सुगंध बिखर जाती है । प्रेम-सिक्त देह का कितना महीन चित्र खींचते हैं कबीर।

प्यंजर प्रेम प्रक्रिया, अंतरि भया उजास।

मुख कसतूरी महमहीं, बांणी फूटी बास ।।

दूसरा चित्र यह देखिए की प्रेम में अर्पित मन जब विरह की अग्नि में जल रहा हो तो मृत्यु का सन्निकर्ष और विरहिणी का उलाहना यूं प्रकट होता है कि विरहिणी पीया को देखने की उत्कट आस में क्षीणकाय हो गई है, उठने की कोशिश करती है और गिर पड़ती है। वह कह रही है कि ऐसी दशा में में भी तू मिलने नहीं आ रहा तो क्या मेरे मर जाने के बाद

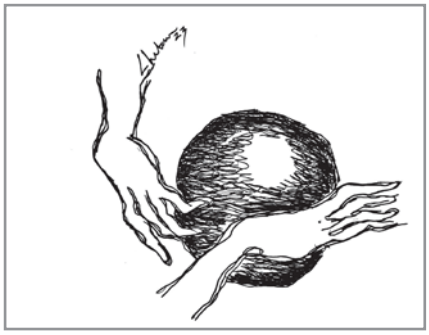
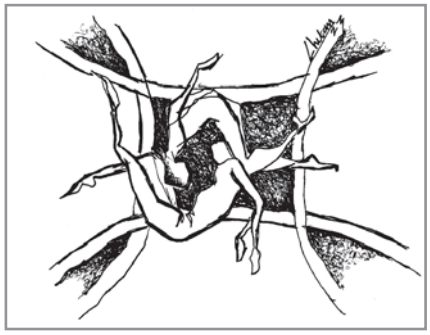
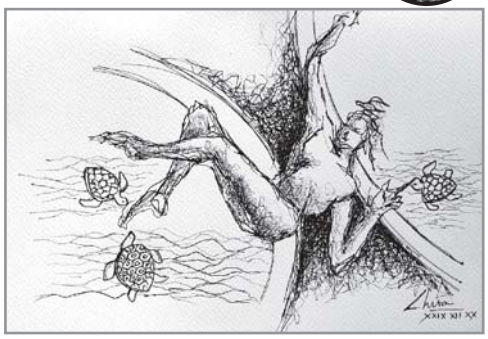

दर्शन देगा? फिर तू आ भी गया तो मेरे किस काम का ! मैं तेरे पास आ नहीं सकती,तुझे समझा नहीं सकती। कैसा प्रेमी है तू , जो दुश्मन बन कर यूं ही मुझे विरह में जला जला कर मार डालेगा ।

बिरहिन ऊठै भी पड़े, दरसन कारनि राम।
मूवां पीछै देहुगे, सो दर्शन किहिं काम ।।
आइ न सकौं तुझ पैं, सकूं न तूझ बुझाइ।
जियरा यौंही लेहुगे, बिरह तपाइ तपाइ ।।

कबीर लोक के चितेरे हैं । उनकी रचनाओं में जनजीवन का व्यवहार चित्रित है। वे लोक के सहारे परलोक को प्रकट करते हैं वैसे ही जैसे एक चित्रकार मूर्त आकार के सहारे अमूर्त संसार प्रकट करता है। कबीर की रचनाओं को यदि एक कलाकार की दृष्टि से देखा जाए तो वहां वह सब कुछ मिलेगा जो पेंटिंग की दुनिया का व्याकरण है। स्टिल लाइफ, लैंडस्केप, पोर्ट्रेट आदि आदि वहां जीवंत है ।

यह तन कांचा कुंभ है, लियां फिरै था साथि।
ढबका लागा फूटि गया, कछू न आया हाथि।।

सीटी स्केप की झलक कुछ यूं है--

कबीर नौबति आपणी, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पाटन ए गली, बहुरी न देखै आइ।।

प्राकृतिक छटा देखिए--

झिरिमिरि झिरिमिरि बरषिया पांहण ऊपरी मेह।
माटी गलि सैजल भई, पांहण वो ही तेह ।।

शराबखाने के चित्र के बहाने गुरु और उसके प्रति समर्पण की बहुत गहरी बात कबीर रखते हैं --

कबीर भाटी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपै सोई पिवै, नहीं तो पिया न जाई।।
हरि रस पीया जांणिये, जै कबहु न जाइ खुमार।
मैंमंता घूंमत रहे, नाही तन की सार ।।

कबीर अपनी रचनाओं में वस्तु के मर्म को पकड़ते हैं। और उसी को उद्घाटित करते हुए उससे संबद्ध सारतत्व पर ले जाते हैं। कबीर की रचनाओं में जीव जगत के बहाने क्षय वृद्धि। तुलना के बहाने सादृश्य और अर्थ के कोण से संयोजन का परिपक्व विधान मिलता है। निषेध हो अथवा विधायक तत्व, वे दृश्य की पूर्णता लाते हैं। कबीर की रचनाएं मनोरम चित्र की तरह अलबेली हैं। उन्होंने ऐसी कोई वस्तु नहीं छोड़ी जिसे इंगित किया जा सके। उनके रचना कैनवास पर पनिहारिन है, गड़रिया है,साधू है,बनिया है,राजा है,रंक है,घुट्टी है,चाक है, लौटा है,डोर है,पानी है,प्यास है,विरह है,मिलन है, अर्थात वहां जीवन और जगत का व्यापक परिवेश दिखाई पड़ता है। कबीर की कलम ने एक ऐसा ताना बाना बुना है जिसमें कांगड़ा से लेकर कर्नाटकी तक की शैलियों की छवियां हैं। प्रभाववाद , अभिव्यंजनावाद या दादा वाद हो अथवा संस्थापन का पक्ष हो कबीर की कृतियों में समग्रता समाई है।

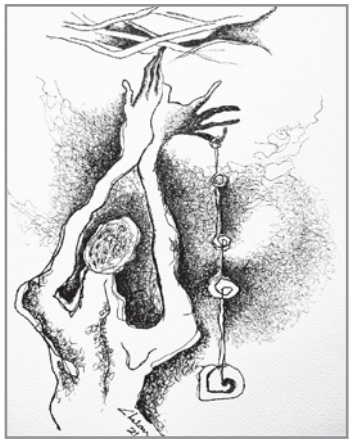

मूलत: बात आस्वाद की है कबीर कहते हैं जिसे लेना आ गया वह तो भीग गया और जिसे लेना नहीं आया वह सूखा ही रहा। चित्रों को देखते समय भी कबीर का यही सूत्र काम करता है--

हरिया जांणै रूंषड़ा, उस पांणीं का नेह।
सूखा काठ न जाणई, कबहू बूठा मेह ।।

स्तंभकार लेखक वरिष्ठ साहित्यकार और कवि, चित्रकार हैं।
संपर्क : 49 सी, जन्म मार्ग, सूरजयोल अदंर, उदयपुर 313001 (राजे.)
मो. 9602015389

■

मध्यप्रदेश में कबीर पंथ

सन्त कबीर के जीवनकाल में ही उनकी प्रतिष्ठा सदगुरु के रूप में हो गयी थी। उनके शिष्यों ने देश और विदेशों में अनेक स्थानों पर केन्द्र स्थापित किए हैं। मध्यप्रदेश में भी इनके अनेक केन्द्र हैं।

श्री धर्म साहेब तथा वंश गद्दी बांधवगढ़

मध्यप्रदेश के बांधवगढ़ (जिला शहडोल) में श्री धर्म साहेब पैदा हुए। आप भगवद् उपासक, मूर्तिपूजक वैष्णव भक्त थे। आप अपने तीसरेपन में घर के कामकाज से छुट्टी लेकर तीर्थयात्रा पर निकले और मथुरा में श्री कबीर साहेब की वाणी से प्रभावित हुए।

आपकी पत्नी का नाम आमीन तथा दो पुत्रों का नाम नारायण और चूरामणि था। बड़े लड़के नारायण की गद्दी नौ पीढ़ी तक बांधवगढ़ में चली। उनके मठ यत्र-तत्र हैं। धर्म साहेब के छोटे लड़के चूरामणि ने कुदुरमाल (जिला बिलासपुर) में जाकर अपनी गद्दी की स्थापना की। कुदुरमाल के बाद इनकी गद्दियाँ रतनपुर, मंडला, धमधा, सिंगोड़ी, कवर्धा आदि घूमती रहीं। अंततः बारहवें महंत श्री उग्रनाम साहेब ने विसं. 1953 में रायपुर जिले के दामाखेड़ा में मठ स्थापित किया। तब से आज तक वहीं श्री चूरामणि साहेब की वंशगद्दी का मुख्य केन्द्र माना जाता है।

इस शाखा ने कबीरवाणी का देश व्यापी प्रचार किया और इसका प्रचार विदेशों में भी खूब हुआ। इस शाखा के भारत में फैले प्रसिद्ध मठों के नाम इस प्रकार लिये जा सकते हैं- कुदुरमाल, रतनपुर (बिलासपुर), मंडला (मध्यप्रदेश नर्मदा तट), मऊ सहनिया (छतरपुर), धमधा (दुर्ग), नानापठे (पूना), सिंगोडी (छिंदवाड़ा), गरौठा (बुंदेलखंड), जामनगर, दार्गिया लाल दरवाजा (सूरत), सियाबाग (बड़ौदा), कवर्धा (राजनांदगांव), दामाखेड़ा (रायपुर), बमनी, खरसिया (रायगढ़), सागर हरदी, धनौरा (मध्यप्रदेश), खैरा (बिहार), खांपा (नागपुर), छोटी बड़ौनी (दतिया), मौरवी (गुजरात), बंगलोर (कर्नाटक), अहमदाबाद आदि। कबीरचौरा काशी, धनौती, विद्दूर तथा वंशगद्दी इन गद्दियों के मठों की संख्या बहुत अधिक है। वंशगद्दी की शाखाएँ तो फीजी, ट्रीनीडाड (अमेरिका) अफ्रीका, मारीशस आदि देशों में भी हैं।

श्री नारायण साहेब तथा वंशगद्दी-उचेहरा (सतना)

श्री धर्म साहेब के बड़े लड़के श्री नारायण साहेब की गद्दी अपने पैतृक स्थान बांधवगढ़ (जिला शहडोल) में ही चलती रही। आप के पीछे तीन पीढ़ियों की गद्दी बांधवगढ़ में ही रही। पाँचवी पीढ़ी के श्री परमानदास साहेब राजनैतिक उथल- पुथल के कारण बांधवगढ़ छोड़कर वर्तमान सतना जिले के सोहावल ग्राम में आ गये। आप सोहावल ग्राम में कुछ वर्ष रहकर उचेहरा ग्राम (जिला सतना) चले गये। श्री परमान साहेब प्रतिभा के धनी थे। इनकी कई रचनाएँ हैं जैसे निकासी, मूलदक्ष, कबीर-रामानंद, जम चरित, कुंजल कथा आदि। उपर्युक्त ग्रंथ विक्रमी सं. 1743 के लगभग उचेहरा में ही लिखे गये हैं। आपकी समाधि उचेहरा की नदी के पास बनी है।

परमान दास साहेब के ही परिवार के लोग उचेहरा के अतिरिक्त मुरैना, महेवा, मोहिन्द्रा (पन्ना जिला), धरमपुरा, खितौली, मुरवारी, सिलौडी (जबलपुर जिला), सोहावल जसो, सितपुरा (सतना जिला) आदि में फैल गये और अपने- अपने ढंग से कबीरपंथ का प्रचार करते रहे तथा आज भी करते हैं।

आजकल नारायण साहेब की शाखा की मुख्य गद्दी उचेहरा है। इस गद्दी पर बारहवें महंत श्री सरजूदास जी साहेब हुए हैं। वंश परम्परा की श्री चूरामणि शाखा जिसकी वर्तमान मुख्य गद्दी रायपुर जिले के दामाखेड़ा ग्राम में है, इस शाखा के समान ही श्री नारायण साहेब की शाखा में उपासना और पूजा पद्धति है। इस शाखा की बहुत पुस्तकें हैं जो हस्तलिखित रूप में ही हैं। श्री चूरामणि नाम साहेब की शाखा छत्तीसगढ़ में फैली तथा श्री नारायण साहेब की शाखा बघेलखंड और बुन्देलखंड में फैली। इनका प्रचार भारत के अनेक स्थानों और विदेशों में भी है। श्री चूरामणि साहेब की शाखा आज भी कबीरवाणी के प्रचार में रत है। इस शाखा में भी श्री चूरामणि साहेब की शाखा की तरह गृहस्थ गद्दी चलती है।

श्री कबीर आश्रम-खरसिया गद्दी

विक्रम की बीसवीं के अंत में श्री विचार साहेब शास्त्री, ग्वालियर के बाजीराव कांटे, स्वामी युगलानंद बिहारी तथा बड़ौदा के श्री मोती साहेब के प्रयास से खरसिया (रायगढ़) में विरक्त गद्दी की स्थापना हुई। इसके प्रथम गद्दीनशीन रूसडा के श्री काशी साहेब हुए। इसके भारत में अनेक शाखा मठ हैं।

पनिका कबीरपंथी

कहा जाता है कि श्री धर्म साहेब के दो पुत्रों श्री चूरामणि साहेब या श्री नारायण साहेब में से कोई एक कहीं जा रहे थे। एक बाग में पाँच व्यक्ति मिले और वे इनके ज्ञान से प्रभावित होकर इनसे दीक्षित हो गये और उन्होंने सदाचार के मार्ग तथा कबीरपंथ में जीवन पर्यन्त रहने के लिये दृढ़ प्रण कर लिया। शुरू में इनकी पाँच की संख्या होने से या अपने पक्के प्रण

के कारण प्रणिका कहलाकर बाद में पनिका कहलाये। ये शायद जिला इलाहाबाद मानिकपुर नामक स्थान में रहने के कारण मानिकपुरी भी कहलाते हैं। मानिकपुरी पनिका मध्यप्रदेश में प्रसिद्ध हैं। इनकी एक 'पनिका' नाम की जाति ही हो गयी है।

श्री कबीर निर्णय मंदिर-बुरहानपुर

श्री पूरण साहेब एक प्रसिद्ध वैराग्यवान पारखी संत हुए हैं जिन्होंने बुरहानपुर में रहकर बीजक टीका (त्रिज्या), निर्णयसार, वैराग्यशतक आदि ग्रंथ लिखे। आपने यह बताया कि सदगुरु कबीरदेव ने जो पारख का उपदेश किया है, वही पारख उपदेश पूज्य श्री धर्मसाहेब ने किया। इसके बाद इस क्रम में बहुत से पारखी संत हुए।

श्री पूरण साहेब ने बुरहानपुर की ताप्ती नदी के तट पर परकोटा में बैठकर तप और ग्रंथ लेखन किया और वि.स. 1894 (1838 ई.) में वहीं अपना शरीर छोड़ दिया। यहीं पीछे मठ स्थापित हुआ। यहाँ आपकी समाधि बनी हुई है तथा इस के पूरब में एक दूसरी समाधि है जो आपके एक मित्र संत की है। यहाँ की शाखाएँ सिंधखेड़ा राजनांदगाँव, चिवरी, ढेठा, डोला, सिवनी, भानपुरी, अटंग, सिरसिदा, महासमुंद, गातापार, रणाईस, भड़ा, चिरईबाँधा, अंबाला, वाराणसी, नेपाल, इत्यादि अनेक स्थानों में है। बुरहानपुर का श्री कबीर निर्णय मंदिर पारख सिद्धांत की प्रेरणा का केन्द्र है।

कबीर पंथ पारख सिद्धांत-रीवा गद्दी

रीवा स्थित श्री कबीर मंदिर के संस्थापक सन्त श्री अमर साहेब (विक्रम संवत् 1800-1880) थे। आप रीवा के महाराज अजीत सिंह के समकालीन थे। रीवा नरेश ने आपकी दिव्य प्रतिभा और त्याग वैराग्य से प्रभावित होकर आपको अपने नगर में ठहराया और रीवा में श्री कबीर मंदिर का निर्माण करवाया। श्री अमर साहेब के बाद हुए प्रमुख गुरुओं में श्री सुखलाल साहेब, श्री गरीब साहेब, श्री परमहंस साहेब, श्री देवा साहेब, श्री हनुमान साहेब और श्री बुद्ध साहेब की गुरुपरम्परा चली। यह केन्द्र सन्त कबीर के पारख सिद्धान्त का अनुयायी है।

कबीरपंथ का क्षेत्र

कबीरपंथ का केन्द्र अवश्य ही उत्तर भारत रहा, परन्तु कबीरपंथ का व्यापक प्रचार प्रसार मध्य भारत में भी है। वैसे उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, गुजरात तथा महाराष्ट्र में कबीरपंथियों की संख्या अधिक है। मद्रास, आसाम, बंगाल, पंजाब, ट्रावनकोर, कोचीन, कश्मीर में भी इसके अनेक अनुयायी हैं।

बनारस में कबीर चौरा मठ है। लहरतारा में दो मठ-एक कबीर चौरा तथा दूसरा खरसिया का है। कबीर कीर्ति मंदिर, कबीर हनुमत पुस्तकालय मंदिर, कबीर पारख मन्दिर, कबीर मन्दिर शिवपुरी (बनकटा) आदि यहाँ कई कबीरपंथी मठ हैं।

बम्बई, हरिद्वार, सहारनपुर, लखनऊ, कानपुर, झाँसी, खुर्जा, बुलन्दशहर, धानेपुर, बड़हरा (गोंडा), उत्तरकाशी, पूना, नागपुर, बाड़ी (धौलपुर), अलीगढ़, आगरा, गाजीपुर, नीमसार, अयोध्या, इलाहाबाद, पानीपत, दिल्ली आदि में कबीरपंथी मठ हैं। बड़ौदा, अहमदाबाद, सूरत आदि शहरों में कबीरपंथ के कई-कई मठ हैं। बिहार में तो कबीरपंथी मठों का गढ़ है। धनौती, विद्दूपुर लहेजी, मानसर, फतुहा, तुर्की, रोसड़ा, पर्वत्ता, लक्ष्मीपुर, डंगरहा, पूर्णिया, समस्तीपुर, पावा, दानापुर, दरभंगा, टाटानगर, मुजफ्फरपुर, खैला, पटना आदि में कबीरपंथी मठ हैं। मध्यप्रदेश के रीवा, कुदुरमाल, दामाखेड़ा, बुरहानपुर, रतनपुर, हटकेसर, खर- सिया, बमनी मंडला, उचेहरा, भड़रा, धमधा, परकोटा, कवर्धा, रायपुर, नवापारा (राजिम), सागर, चाँपा, जबलपुर, बनहरदी (सागर), ग्वालियर, महासमुन्द, राजनांदगाँव, भिलाई, कबीर-तीर्थ, मंदरौद (कुरुद), करहीमदर (दुर्ग), सेंचुवा (छाती), कोलियारी (कुरुद), कबीर-मठ, नादिया, श्योपुर-कलाँ आदि में कबीरपंथी हैं। गुजरात में अहमदाबाद, बड़ौदा, खंभात, सूरत, नड़ियाद, भड़ौच, जामनगर, राजकोट, जूनागढ़, अड़ास रोड (आनंद) सहित भारत के अनेक शहरों और देहातों में कबीरपंथी मठ फैले हैं।

विदेशों में ट्रीनिडाड (अमेरिका) दक्षिण अफ्रीका, फीजी, लंका, मारीशस, ब्रिटिश गयाना, म्यांमार, भूटान, नेपाल, ईरान, अफगानिस्तान और पाकिस्तान में कबीर पंथी मठ तथा पंथ के अनुयायी हैं तथा वे अपने कार्यक्षेत्र में सक्रिय हैं।

(उक्त संकलन मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ विभाजन के पूर्व का हैं।)

स्त्रोत : मध्यप्रदेश जनसंपर्क संचालनालय

कला समय

आगामी अंक

अगस्त-सितम्बर 2024

आयुष्य संस्कृति विशेषांक

निरोग काया और उसके उपाय के रूप में नियमित दिनचर्या, प्रकृति विहार और स्वाभाविक आहार, योगासन, मल्ल क्रीड़ा, स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना, घरेलू वाटिका में चिकित्सकीय पौधे, रसोईघर वैद्यशाला के रूप में विकसित करना, आयुर्वेदिक ग्रंथों के अध्ययन की प्रवृत्ति, रसायन योग्य कुटी साधना, ऋतु आहार और विहार, आंचलिक जड़ी बूटियों का उपयोग... जैसे विषयों पर आलेख, चित्र, रचनाएँ आमंत्रित है।

- संपादक

पुस्तक भूमिका

कबीर पर उपन्यास : लोई का ताना

– रांगेय राघव

प्रसिद्ध उपन्यासकार रांगेय राघव (1923 – 1962) ने कबीर पर उपन्यास लिखा था : 'लोई का ताना' की भूमिका। इस संत कबीर विशेषांक हेतु विशेष संकलन। संपादक

'प्रस्तुत ग्रन्थ में कबीर की झाँकी है। वैसे कबीर के जीवन – सम्बन्धी तथ्य अधिक नहीं मिलते। मैं उनके साहित्य को पढ़कर जिन निष्कर्षों पर पहुँचा हूँ उन्हीं को मैंने उनके जीवन का आधार बनाया है। कबीर पहले निम्नजातीय हिन्दू बनकर रहना चाहते थे। पर रामानन्द की दीक्षा के बाद वे जात-पाँत की ओर से संदिग्ध हो गए। वे पहले अवतारवाद मानते थे। फिर वे निर्गुण की ओर झुके। फिर योगियों के रहस्यवाद और षट्चक्र साधना आदि की ओर। बाद में वे सहज साधना में चमत्कारवाद से आगे बढ़ गए। अन्त में तो वे एक नई भूमि पर पहुँच गए जिसका वर्णन यहाँ मैंने किया है।

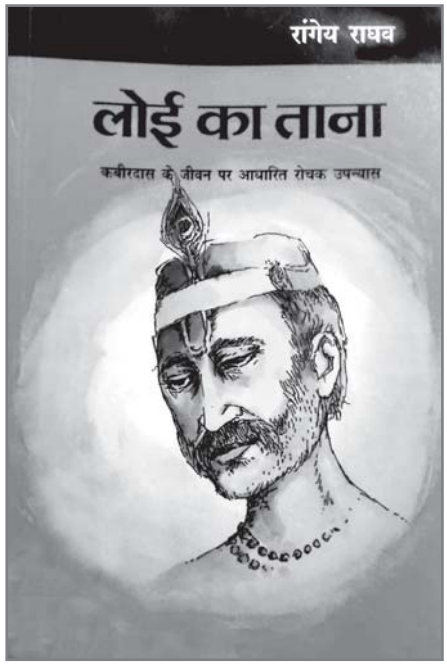

कबीर को लोगों ने गलत समझा है। कबीर में सूफीमत, वेदान्त, रहस्यवाद, नारीनिन्दा तथा अनेक बातें हैं जैसे संसार की असारता पर जोर, मायावाद आदि का वर्णन, पर ये अनेक विकास की मंज़िलें हैं। वे धीरे-धीरे आगे बढ़ गए हैं। वे कितने बढ़ गए थे यह समझना तब और भी अधिक आश्चर्य देता है जब हम सोचते हैं कि वे आज से सैकड़ों बरस पहले थे। कबीर के चेलों ने ब्राह्मणों की नकल की। कबीर के विद्रोह और सत्य को दबा दिया गया। कबीर इतिहास में एक उलझन बन गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ब्राह्मणवादी आलोचक थे। उन्होंने कबीर को नीरस निर्गुणिया कह दिया। वे कह गए हैं कि कबीर ने कोई राह नहीं दिखाई। कबीर ज्ञान को रहस्य में डुबाता था। साधारण जनता कबीर को समझ नहीं सकी।

यह सब ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण है अत: त्याज्य है। अवैज्ञानिक है। कबीर निर्गुण के परे थे। कबीर ने जो राह दिखाई वह मानवता को कल्याण की ओर ले जानेवाली थी। वे भारतीय संस्कृति के नाम पर भेदभाववाले ब्राह्मणवाद को नहीं मानते थे। वे इस्लाम का विरोध करके भी उससे घृणा नहीं करते थे, और उसे मुक्ति का पथ भी नहीं समझते थे। कबीर ने जनता का दलित जीवन देखा था, तुलसीदास की भाँति नहीं, एक जुलाहे की भाँति। वे सगुण ईश्वर को मानकर ब्राह्मणवाद के नियमों में बंध नहीं सके। पर उनका रहस्य भी ऐसा न था कि वे संसार को छोड़ देते। घर में पत्नी थी, पुत्र था। पर पत्नी और पुत्र के ही लिए डूबे रहकर दूसरों का गला काटना वे माया कहते थे। कबीर ने कहा कि इन्सान को किसी रूढ़ि की जरूरत नहीं, वह ईश्वर के लिए झगड़े, यह व्यर्थ की बात है। ईश्वर रहस्य इसीलिए है कि मनुष्य अपनी सीमित बुद्धि से उसे जान नहीं सकता, जो जानकार बनते थे उनको उन्होंने झूठा कहा। कबीर ने ही कहा था कि प्यारे, आसमान पर ताकना छोड़ दे। मन की कल्पना और भरमना छोड़ दे। ये क्या शून्यवादी के शब्द हैं?

कबीर ने दूसरों के बल पर खानेवाले साधुओं का घोर विरोध किया था। वे तो मेहनत का खाना चाहते थे। साधारण जनता ने कबीर को समझा था। उसी ने कबीर को मुल्ला, पंडित, जोगी आदि के पुरोहित वर्ग और सत्ताधारियों से बचाया था। पर बाद में कबीरपंथियों ने कबीर को मिटा दिया। परवर्तियों में कबीर को चमत्कारों से ढक दिया गया।

कबीर ने हिन्दू-मुसलमानों दोनों को नितान्त निम्नजाति के आदमी की आँखों से देखा था। पर चेले पढ़े-लिखे थे। उस समय मुसलमान शासकों की शक्ति भी बढ़ गई थी। सारी भारतीय जातियों का संगठन हो रहा था। निम्नजातीय जनता के रूप में कबीर के अनुयायी भी दलित थे। शासन मुस्लिम था। अत: इस्लाम पर अत्याचारों के नाम चढ़ते थे। उस समय कबीर पंथ हिन्दू मत ही बन गया था। कबीर ने तो भारत के सांस्कृतिक जन-जागरण की नींव डाली है। उसके युग के बन्धन थे, और उनकी उसपर छाप है। वह धीरे-धीरे विकास करके कितना आगे आ गया था!

भाषा में उसने क्रान्ति की। बिल्कुल जन-भाषा बोली। तुलसी की

भाँति वक्त-बेवक्त की बैसाखियाँ नहीं लगाई। तुलसी के देवता आखिर संस्कृत बोलते थे। कबीर ने जनता के उपमान लिए और जीवन के अच्छे आचरण पर, सामाजिक आचरण पर जोर दिया। जहाँ तुलसीदास सारे अनाचार की जड़ कलि को मानते थे, कबीरदास कलि का नाम नहीं लेते। वे तो मोह-लोभ-दम्भ और धन को ही इस माया और अनाचार का मूल मानते हैं। कबीर का मुख्य सन्देश प्रेम का है।

अब प्रस्तुत पुस्तक के बारे में कुछ और बातें साफ कर दूँ। कबीर पढ़े-लिखे न थे। कविता लिखते नहीं थे। वे तो फौरन सुनानेवालों में थे। लोग लिखा करें, उन्हें इससे बहस नहीं थी। वे तो कह देते थे। इसी से मैंने उनकी कविताएँ उनके मुँह से परिस्थतियों के बीच में सुनवाई हैं। दूसरी बात है कमाल के द्वारा कथा कहलवाना। कमाल कबीर का पुत्र था। कमाल के बारे में प्रसिद्ध है- बूड़ा बंस कबीर का, जब उपजा पूत कमाल। परन्तु यह विद्वानों द्वारा कबीर की पंक्ति नहीं मानी गई। कमाल के बारे में किंवदन्ती है कि कबीर के बाद जब उसने पिता के नाम पर पंथ चालू करने से इंकार कर दिया तो कबीर के चेलों ने उसे ऐसा नाम दे दिया। कबीर की पत्नी लोई थी। कबीर की कविताओं में उसका नाम है।

तथ्यों के अभाव में कबीर के जीवन का पूरा चित्र देने में कमाल ने सहायता दी है। पहले कमाल उपसंहार में अपनी परिस्थिति बताता है। तब कबीर मर चुका है और पंथ बन गया है। 'उपसंहार से पहले' में कबीर की मृत्यु के बाद गुरु की कविताओं को सुनाकर आपस में लड़नेवाले चेलों का वर्णन है। फिर 'आरम्भ' तक कबीर के विशेष रूप हैं। मरजीवा वाला अध्याय कबीर की महानता, नया पंथ और उसके चिन्तन को स्पष्ट करने को है। अन्तिम अध्याय में कबीर के जीवन के मोड़ हैं।

कमाल ही बोलता है। मैं नहीं बोलता। अपने युग के बंधनों में रहकर जो कमाल कह सकता है वह कहता है, बाकी मैं भूमिका में कहे दे रहा हूँ। कबीर निस्संदेह तत्कालीन जीवन में क्रान्ति का बीज था। दुर्भाग्य से बाद में फिर वह वर्गसंघर्ष जातिसंघर्षों में दब गया। तब वर्गसंघर्ष का मतलब वर्णसंघर्ष ही था।'

साभार

बीसवीं सदी के संत सिंगाजी कहे जाने वाले पद्मश्री पंडित रामनारायण उपाध्याय जी कि 23 वीं पुण्यतिथि पर उन्हें श्रद्धांजलि ।

निमाड़ के लोक - संस्कृति पुरुष पण्डित रामनारायण उपाध्याय
20 जून 2001 के दिन सायँकाल में निमाड़ के इस सूर्य ने अपनी इहलीला को समाप्त कर दिव्य-ज्योति में विलीन हो गए थे ।
शत् शत् नमन

पुस्तक समीक्षा

तोड़ने और रचने की समझ से झाँकते कबीर

– विनोद नागर

पुस्तक विवरण–

पुस्तक शीर्षक	:	कबीर तोड़ने और रचने की समझ
सम्पादक	:	प्रभाकर श्रोत्रिय
प्रकाशक	:	प्रभाकर प्रकाशन, दिल्ली
पृष्ठ संख्या	:	206
मूल्य	:	₹250/–

मूर्धन्य साहित्यकार और प्रखर आलोचक डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय के अवसानके सात साल बाद उनकी एक नई पुस्तक 'कबीर: तोड़ने और रचने की समझ' इस वर्ष छपकर आई है। प्रभाकरजी की यह 'उत्तर' कृति उनकी धर्मपत्नी श्रीमती ज्योतिबाला श्रोत्रिय ने रिक्तता भरे एकाकी जीवन में पूरे मनोयोग से सहधर्मिणी का धर्म निभाते हुए प्रकाशित करवाई है। किसी दिवंगत साहित्यकार के गुजरने के सालों बाद उसकी गैर मौजूदगी में छपकर आई किताब के पन्ने पलटते हुए एक अलग ही अनुभूति होती है, जो भावुकता के ज्वार में बहा ले जाती है।

सम्पादक: प्रभाकर श्रोत्रिय

श्रोत्रियजी से पहली मुलाकात 1978 में हुई थी। धार के शासकीय महाविद्यालय से एम.ए. करने के बाद मैंभोपाल में नौकरी केसिलसिले में एक इंटरव्यू देने आया था। केन्द्रीय विद्यालय भोपाल में अध्यापनरत गट्टू भाईसाहब और शीला भाभी यानि श्री प्रभाशंकर नागर और श्रीमती हरजीतकौर नागर (अब दोनों ही दिवंगत) तुलसी नगर में बारह सौ पचास क्वार्टर्स स्थित उनके आवास एफ–82/101 पर मुझे उनसे मिलवाने ले गये थे। चूँकि तब तक अकिंचन के आलेख,फिल्म समीक्षा आदि माधुरी,मायापुरी,रविवार,सरिता–मुक्ता आदि पत्र–पत्रिकाओं में छपने से लेखकीय अंकुरण का प्रस्फुटन हो चुका था,अत: श्रोत्रियजी से मिलना फलीभूत हुआ। श्रद्धेय कमलेश पारे (जो उसी ब्लॉक में श्रोत्रियजी के पड़ोसी थे) से भी पहली मुलाकात तभी हुई थी।

अगले ही साल जब पिताजी का तबादला धार से सीधे राजधानी भोपाल के वल्लभ भवन में अंडर सेक्रेटरी के पद पर हुआ तो हमारा परिवार बोर्ड ऑफिस के सामने एफ–118/1शिवाजी नगर में रहने आ गया। श्रोत्रियजी के घर आने–जाने का सिलसिला 1984में रिश्तेदारी में बदल गया,जब उनकी भतीजी और डॉ. निरंजन श्रोत्रिय की छोटी बहन अलका का विवाह हमारे छोटे भाई प्रमोद से सम्पन्न हुआ। बाद के वर्षों में जब वे भोपाल/ कोलकाता/ दिल्ली में रहते हुए दो बार मप्र साहित्य परिषद के सचिव तथा 'साक्षात्कार' 'अक्षरा' 'वागर्थ' और 'ज्ञानोदय' जैसी साहित्यिक पत्रिकाओं के सम्पादक रहे तब भी सतत स्नेह संपर्क बना रहा।

भोपाल में आखिरी बार 2015 में उन्हें विश्व हिन्दी सम्मेलन के मंच पर सम्मानित होते देखा था। रुग्णावस्था में जीवन के अंतिम दिनों में जब वे दिल्ली से भोपाल आकर अपने अभिन्न मित्र और सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी से इलाज़ कराने के लिए नोबल हॉस्पिटल में दाखिल रहे,तब अस्पताल में बिस्तर पर लेटायमान उनकी जर्जर–सी हो चुकी काया से साक्षात्कार सर्वाधिक पीड़ादायक रहा.. उफ्फ..!

बहरहाल,उनके जाने के सात साल बाद आई उनकी 'नई' किताब 'कबीर: तोड़ने और रचने की समझ' के पन्ने पलटते हुए मन भावुक भी है और भावविभोर भी! यह प्रभाकरजी की आलोचना,निबंध,नाटक और अन्य सम्पादित पुस्तकों से थोड़ा हटकर है। जीवन के अंतिम वर्षों में लगातार बिगड़ते स्वास्थ्य के बीच उनके द्वारा सम्पादित यह आखिरी पुस्तक पूरी तो हो गई थी,लेकिन प्रकाशित न हो पाई थी। 2023 में इसका छपकर आना प्रभाकरजी की अचानक ठिठकी शब्द यात्रा के पुन: कुछ कदम और चलने का आभास दिलाने जैसा है। सुखद संयोग कि पुस्तक के प्रकाशक (प्रभाकर प्रकाशन,दिल्ली) के नाम में भी उनका नाम समाहित है।

प्रभाकरजी ने कालिदास के मेघदूत और सूरदास के भक्ति काव्य से लेकर जयशंकर प्रसाद,प्रेमचंद,शिवमंगल सिंह 'सुमन'धर्मवीर

भारती,शमशेर बहादुर सिंह और रामविलास शर्मा आदि की साहित्यिक सृजनात्मकता का विशद अध्ययन कर उन्हें आलोचनात्मक दृष्टि से परखा,लेकिन 'कबीर'जो स्वमेव कहीं पीछे छूट गये थे,उनके जाने के सात साल बाद अब जाकर पुस्तकाकार रूप में प्रकट हुए हैं।

पुस्तक की दस पृष्ठों वाली प्रस्तावना में प्रभाकरजी लिखते हैं- 'छह सौ साल पहले का कवि आज क्यों प्रासंगिक हुआ जा रहा है? क्या हम उसी मध्यकाल में लौट गये हैं? जहाँ कबीर थे और दोनों हाथ उठाकर चेता रहे थे। कवि की प्रासंगिकता तो अपने समय में उसकी सजीव और सार्थक उपस्थिति में होती है,पर कबीर की प्रासंगिकता आज हमारे समय से ज्यादा जुड़ी है। किस वक्त सच बोलना.. कितना सच बोलना.. किस वक्त चुप हो जाना.. कहाँ साहस दिखाना.. कहाँ मेमना बन जाना.. ऐसी भेद बुद्धि कबीर में होती तो वे इतिहास की शिलाओं को फोड़कर हमारे बीच प्रकट नहीं हो सकते थे,क्योंकि ऐसे हिसाबी-किताबी लोग रोज मरते और रोज पैदा होते हैं।'

आगे वे लिखते हैं- 'इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर की समाज सुधारक और विद्रोही चेतना के केन्द्र में अध्यात्म है। उनका अधिकांश काव्य लोक संबोधन शैली में है। ऐसा विराट संबोधन काव्य पूरे हिन्दी साहित्य में दुर्लभ है। वे अपनी अनुभूति और ज्ञान को जन सामान्य तक पहुँचाना चाहते थे। यों, सभी संत वाचिक परंपरा से आये थे,परंतु विभिन्न भाषाओं के शब्दों का जितना सार्थक व धारदार काव्यात्मक उपयोग कबीर ने किया,उतना किसी अन्य संत कवि ने नहीं। कबीर जैसा बतरस किसी में नहीं। वे धिक्कारने में ही नहीं ठिठौली करने में भी अव्वल थे।'

दो सौ पृष्ठों वाली पुस्तक में परमानंद श्रीवास्तव के लिखे 'कबीर का सामना इसी दुनिया से है' शीर्षकीय आलेख सहित दो दर्जन बहुआयामी विश्लेषणात्मक आलेख शामिल हैं। कबीर को जानने-समझने की दृष्टि से शुकदेव सिंह,प्रमोद वर्मा,सेवा सिंह,शंभूनाथ,जय प्रकाश,खगेन्द्र ठाकुर,जीवन सिंह ठाकुर, मोहम्मद कमाल,श्रीलाल शुक्ल, अरविंद त्रिपाठी, रामचंद्र तिवारी, विष्णुकांत शास्त्री, सुमन राजे, रंजन बंद्योपाध्याय, रघुवीर चौधरी, डेविड लॉरेंजन, सुरेश पटेल, निनेल गफूरोवा, रणजीत साहा, ज्योतिभूषण चाकी, विवेक दास और वासुदेव सिंह के लिखे आलेखों को पढ़ना सुहाता है।

(लेखक मध्य प्रदेश के वरिष्ठ पत्रकार, समीक्षक और स्तंभकार हैं।)
सम्पर्क: ए-503, प्रकृति ईडन, ई-8 बावड़िया कलाँ, (आशियाना आँगन के पास) शाहपुरा थाना रोड, भोपाल-462039 (म.प्र.)
मो: 9425437902 ई-मेल: vinodnagar56@gmail.com

समवेत

राजाराम रूप ध्वनि कला दीर्घा में 11 वरिष्ठ कलाकारों की चित्रकृतियां प्रदर्शित हुई

दिनांक 20 जुलाई 2024 शनिवार को सप्तवर्णी कला साहित्य सृजन शोध पीठ की 'रूपध्वनि कला-दीर्घा' में भोपाल के ग्यारह वरिष्ठ कलाकारों की कुल 32 चित्र तथा 29 मूर्तियों की प्रदर्शनी का आयोजन किया गया है। इस भव्य प्रदर्शनी का उद्घाटन श्री पवन भार्गव कार्यकारी निदेशक रेलटेल, श्रीमती साधना त्यागी कवित्री के द्वारा किया गया। इस अवसर पर वरिष्ठ कलाकारों - डॉ.श्रीमती सुषमा श्रीवास्तव, श्रीमती शोभा घारे, श्री देवीलाल पाटीदार,श्रीमती उपासना सारंग त्यागी, श्रीमती भावना चौधरी चंद्रा, श्रीमती नीता सोनी, श्री विनय सप्रे, डॉ.श्रीमती सुचिता राउत,श्री बाबुराव सातपुते, श्रीमती प्रीति तामोट विशेष उपस्थिति ने कार्यक्रम को गरिमा प्रदान की। प्रो. राजाराम के पुत्र सौमित्र शर्मा और कौस्तुभ शर्मा ने अतिथियों का उत्तरीय,पौधा और स्मृति चिह्न द्वारा सम्मान किया। प्रदर्शनी की संयोजक डॉ.बिनय षडंगी राजाराम ने स्वागत भाषण प्रस्तुत करते हुए संस्था के महत्वपूर्ण आयोजनों की कुछ जानकारियाँ उपस्थित अतिथियों के साथ साझा की। माननीय अतिथियों ने प्रदर्शनी में भाग लेने वाले सभी ग्यारह वरिष्ठ कलाकारों का पौधा भेंट कर सम्मानित किया। राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपना नाम रौशन करने वाले भोपाल के ख्यातिलब्ध ग्यारह कलाकारों ने अपनी कलाकृतियों के साथ उपस्थित रह कर प्रदर्शनी को सार्थकता प्रदान की। इस अवसर पर कलाकार-सारिणी (कैटलॉग) का विमोचन तथा डॉ. बिनय षडंगी राजाराम की प्रकाशितनाट्य-रचना-संकलन 'प्रस्तुति विलास' का लोकार्पण भी हुआ। कार्यक्रम का सफल संचालन किया डॉ.आभा मिश्रा और डॉ.स्मृति उपाध्याय ने किया। इस अवसर पर भोपाल के अनेक कलाकार एवं संस्कृति कर्मियों की उपस्थिति ने कार्यक्रम को ऊँचाइयाँ प्रदान की। श्री पवन भार्गव जी का कहना था 'कला दीर्घा की सम्पनता को देखकर आश्चर्य की अनुभूति होती है'। श्रीमती साधना त्यागी जी ने कार्यक्रम की प्रशंसा करते हुए राजाराम रूपध्वनी कला दीर्घा के प्रति डॉ. बिनय के अटूट समर्पण की सराहना की। कलाकारों का प्रतिनिधत्व करते हुए डॉ.सुषमा श्रीवास्तव ने संस्था के बारे में तथा अपने शोध निदेशक,चित्रकार-आलोचक प्रो. राजाराम के बारे में अनेक महत्वपूर्ण आनुभव साझा करते हुए कहा--की प्रख्यात चित्रकार श्री राजाराम का स्मरण करते हुए उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को शब्द चित्र के माध्यम से व्यक्त कर भाव पूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित की।

आभार प्रदर्शनी एवं वन्दे मातरम के साथ कार्यक्रम की समाप्ति हुई।

रपट- डॉ. बिनय षडंगी राजाराम, संयोजक निदेशक,
राजाराम रूपध्वनि कला दीर्घा, सप्तवर्णी कला-साहित्य सृजन-शोध पीठ, भोपाल मप्र

कला समय का जल विशेषांक : एक सामयिक विमर्श

मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल से प्रकाशित 'कला समय' पत्रिका, विभिन्न परंपराओं, संस्कृतियों एवं कला विज्ञान की अमूल्य निधि को विस्तार प्रदान करने वाली प्रभावशाली पत्रिका हैं। इसका अप्रैल- मई का जल संस्कृति विशेषांक, विद्वज्जनों की लेखनी से अलंकृत हुआ है। इस अंक के अतिथि संपादक डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' ने अपने विचारों में जल के जिस महत्व को उजागर किया है, उसे हम जानकर भी अनजाने हैं। जल प्राणियों और परंपराओं के प्रवाह के लिए भी एक आवश्यक घटक है। उन्होंने जल को संस्कृति एवं परंपराओं के एक सूत्र में पिरोया है, जहां जल केवल कुछ बूंदे नहीं है अपितु सम्पूर्ण जगत की आत्मा है। इस जल विशेषांक में हमारा आलेख भी है और इस के लिए संपादक द्वय का आभार।

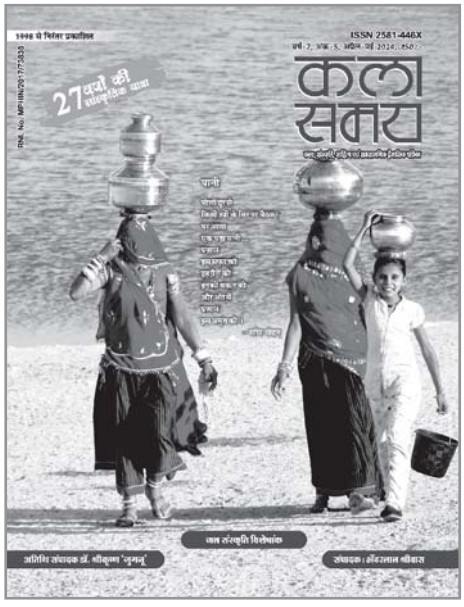

यह जल विशेषांक सभी विद्वानों के द्वारा आहूति रूप है, उनके ज्ञानात्मक योगदान से परिपूर्ण है : अत्यंत ज्ञानवर्धक, जल संस्कृतियों, जल से जुड़े लोकस्वरों, लोक परंपराओं, जल संरक्षण एवं संवर्धन, इतिहास में जल से जुड़े पहलुओं की उपस्थिति एवं कार्यों के विवरण से भरा पूरा। पूरा अंक पठनीय और संग्रहणीय बन पड़ा है। 'कला समय' समूह को कोटि-कोटि बधाई एवं साधुवाद।

पत्रिका के संपादक श्री भँवरलाल श्रीवास जी ने अपने सम्पादकीय में जल के महत्व को दर्शाया है कि कैसे सारी प्रकृति एवं जीव जंतु मनुष्य जल पर निर्भर है एवं मनुष्य किस प्रकार जल संसाधनों को नष्ट कर रहा है। मनुष्य को समय से पूर्व जल के महत्व को समझना आवश्यक है क्योंकि हम जल से जुड़े हैं जल पूर्ण स्वतंत्रता है। श्री संतोष तिवारी ने अपने प्रभावी लेखन से जल के महत्व को जीवन से जोड़कर हमारी जल संबंधी चेतना को जागृत किया है। उन्होंने जल की बूंद को एक अश्रु बूंद के समान माना है। जिस तरह मानव चक्षु, अश्रु बिन सूर समान है, वैसे ही धरती बिना जल के शृंगारहीन है। डॉ. महेश दुबे ने 'अद्वैत विमर्श' स्तंभ में 'शंकर! तुम्हें प्रणाम हमारे' लिखा है। जिसमें कहा गया है कि माया, मोह, आसक्ति, तृष्णा, काम, क्रोध रूपी समस्त कुमार्गगामी आचरण के परे अपना समर्पण परमब्रह्म के चरणों में करना चाहिए। परिचित लेखिका श्रीमती सुमन चौरे ने निमाड़ की लोक संस्कृति में जल संरक्षण की चेतना में सब को आधार रहे यो नीरऽ रेऽ आलेख में जल एवं निमाड़ की पारंपरिक लोकसंस्कृति का मधुरमेल हृदय को अल्हादित करने वाला है। डॉ. सतीश चतुर्वेदी शाकुंतल का आलेख 'लोक में जल' लोकजीवन के विभिन्न पहलुओं जीवन शैलियों, पूजा, चिकित्सा पद्धति आदि में जल की उपस्थिति एवं जलविज्ञान को दर्शाता है। विदुषी श्रीमती शोभासिंह की सौम्य लेखनी से प्रकट आलेख 'नर्मदा का सांस्कृतिक संसार' मां नर्मदा के विशाल स्वरूप में समाई करुणा, लोकसंस्कृति, उनके प्रति मानव द्वारा बरती जा रही लापरवाहियों, जल के प्रति मानव की जिम्मेदारियां को स्पष्ट करता हैं। मां नर्मदा के घाट-घाट कण-कण के महत्व को शब्दों में संजोकर कर सारपूर्ण आलेख प्रदान किया है। 'घड़ोंची ! कृतज्ञता की शीतल अलख' जल से जुड़े लोक आचार-विचारों पर प्रकाश डालता है। डॉ. महेंद्र भानावत लिखित आलेख 'पाणीडो ढुलै तो म्हारो जीवड़ो जलै' में जल के गीतों द्वारा जल के विस्तृत महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

अंक में मणि मोहन की जल संस्कृति पर कविताएं, श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि के नदी गीत, चेतन औदिच्य की पानी पर कविताएं, डॉ. सतीश चतुर्वेदी की ' शाकुंतल' के जल संरक्षण गीत, श्री महेश अग्रवाल की जल आधारित गजलें, श्री अशोक अंजुम के पानी का बाजार पर दोहे... हमें जल से संबंधित पद्य काव्य के दर्शन करवाते हैं। इनकी एक-एक पंक्ति, जल के प्रति आदर और जलसंरक्षण के प्रति जिम्मेदारी को रेखांकित करती है।

प्रो. शैलेंद्र कुमार शर्मा द्वारा लिखित आलेख 'भारतीय संस्कृति में जल तत्व : शास्त्र से लोकतत्व' में जल संबंधी लोकरीति, शास्त्रों में जल से जुड़े प्रसंगों के उल्लेख से जल के जीवन से जुड़ाव को समझाकर जलसंरक्षण के लिए प्रेरित किया गया है। विद्वान ध्रुव शुक्ल जल सत्याग्रह कथा 'हनुमान की जुबानी छोटी सी राम कहानी' के माध्यम से जीवन से छोटी सी कथा में जल के महत्व के विराट दर्शन करवाते हैं। श्री कवींद्र नारायण श्रीवास्तव ने 'बनारस हर गली है गंगा और हर कंकर है शंकर' में जल से जुड़े प्रत्येक आध्यात्मिक, भौतिक पक्षों को संक्षिप्त में अपनी प्रखर लेखनी से व्यक्त किया है। शिवकुमार विवेक द्वारा लिखित आलेख है 'कौन था महानायक लाखा बंजारा?' इसमें पूर्वकालीन परिवेश में बंजारों की जीवन शैली, उनके समाज के प्रति योगदान, विशेष रूप से जल संसाधनों के विषय में लाखा बंजारा के व्याज से दर्शाया गया है। हमने अपने आलेख 'जल के देवता भीमदेव और अनुष्ठान' में आदिवासियों के जीवन से जुड़ी जल संस्कृति एवं लोकमान्यताओं से परिचय देने का प्रयास किया है। इसी प्रकार डॉ. टीकमणि पटवारी द्वारा लिखित आलेख 'बावड़ियों का

गढ़ देवगढ़' भारत की उन्नत भवन निर्माण कला में जलसंरक्षण के साधनों की उपस्थिति एवं सजकता को प्रकट करता है एवं वर्तमान में भी जल संरक्षण की आवश्यकता को बताता है।

डॉ. योग्यता भार्गव के आलेख ' नः क्षय इति अक्षय: अक्ति का विधान और लोक' बुंदेलखंड के विशेष पर्व अखती के त्यौहार के विधान में, जल से जुड़े विधिविधानो, जलपात्रों की उपस्थिति एवं उनके महत्व को दर्शाता है। डॉ. अलका यादव का आलेख 'नदी की धारा से ही जीवन है' में नदियों का वर्णन पठनीय है। डॉ.धर्मेंद्र वर्मा द्वारा लिखित 'कुंडी भंडारा : एक प्राचीन विश्व विख्यात जल संग्रह एवं वितरण प्रणाली' पूर्व काल में जल संरक्षण के लिए किए जाने वाले कुंडी निर्माण की विशेषताओं एवं निर्माण पद्धति एवं वर्तमान में उनके योगदान पर प्रकाश डालता हैं।

पुनश्च, 'कला समय' का जल विशेषांक अधिकारी विद्वानों के ज्ञान से परिपूर्ण होकर सजा संवरा है। समय ही कहेगा इसके लिए साधुवाद और देगा: बधाई ! सादर :

राजनंदनी सिंह तोमर। (हनुमान जी मंदिर के पास) बल्देवगढ़
जिला टीकमगढ़ (म.प्र.) - 472111

RNI पंजी 38087/81 डाकपंजी क्र.म.प्र./भोपाल/210/2024-26 — समाचार भी, विचार भी

स्वदेश

भोपाल, रविवार 16 जून, 2024

पुस्तक समीक्षा — शिवकुमार विवेक, वरिष्ठ पत्रकार

जल संपदा के संदर्भों पर कला समय का संग्रहणीय अंक

जल संपदा के संदर्भों पर कला समय का संग्रहणीय अंक

भीषण गर्मी में पानी को देखना ही बहुत तृप्तिदायक होता है। ऐसे में एक पत्रिका के आवरण को जलमय बनाना सृजनात्मक सोच को दिखाता है। राजधानी भोपाल से गत 27 वर्षों से प्रकाशित हो रही पत्रिका 'कला समय' ने ऐसा आवरण ही नहीं बनाया अपितु जल पर 20 से अधिक लेखों को संयोजित करके जल विशेषांक प्रकाशित किया है। इस विशेषांक का अतिथि संपादन राजस्थान के सुपरिचित कला-संस्कृति मर्मज्ञ डॉ.श्रीकृष्ण 'जुगनू' ने किया है।

जल पर यत्र-तत्र काफी सामग्री प्रकाशित होती रहती है लेकिन इस पत्रिका में जल के प्रति लोक के दृष्टिकोण को बहुत स्पष्ट तरीके से व्याख्यायित किया है। इसके लिए संपादक ने समाज और संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रहे विद्वत लेखकों को जोड़ा है। लोक, कला, समाज और संस्कृति के विभिन्न विषयों को समेटकर निरंतर श्रेष्ठतम विशेषांक लाने वाले पत्रिका के संपादक भँवरलाल श्रीवास का संयोजन सराहनीय है।

डॉ. 'जुगनू' अपने संपादकीय में जल अंक की उपादेयता को इस तरह रेखांकित करते हैं-हमारी जितनी भी रसमयी, उल्लासपूर्ण और रंगदार परंपराएं हैं वह सब जल से ही जीवनमयी हैं। जल के महत्व का पुनर्स्मरण कराते हुए श्री श्रीवास चेताते हैं कि जल का मान रखेंगे तो हमारा मान रहेगा। उक्त दोनों प्रस्तावनाएं जल के महत्व और आवश्यकता का प्रतिपादन करती हैं जिन्हें आगे के लेखों में विस्तार मिलता है। डॉ. 'जुगनू' ने जल के पौराणिक महत्व के साथ उसके वैज्ञानिक उपयोग की ऐतिहासिकता पर भी प्रकाश डाला है। उन्होंने लिखा है कि राजा भोज ने यंत्रों में प्रयुक्त होने वाले चार प्रकार के जल का विवरण दिया है। डॉ. शैलेंद्र कुमार शर्मा ने लोक जीवन में जल तत्व की विशद व्याख्या की है। डॉ सुमन चौरे ने निर्माण की परंपराओं में जल के महत्व को रेखांकित किया है तो डॉ. महेंद्र भानावत ने राजस्थान के लोक समाज में जल की उपस्थिति को दर्शाया है। डॉ. शोभा सिंह ने नर्मदा के लोक महत्व और कवींद्र नारायण श्रीवास्तव ने बनारस की गंगा की चर्चा की है। राजनंदिनी सिंह तोमर ने जल के देवता भीमा देव पर प्रकाश डाला है। पत्रिका में जल गाथा को सतीश चतुर्वेदी, शाकुंतल शिवकुमार विवेक (स्वयं लेखक), डॉ. टीकमणि पटवारी, संतोष तिवारी, धर्मेंद्र वर्मा, अलका यादव, डॉ. ममता यादव और डॉ. योग्यता भार्गव ने भी लिखा है। पत्रिका में जल से संबंधित कविताओं को प्रस्तुत किया गया है वहीं डॉ. महेश दुबे, ध्रुव शुक्ल ने अन्य पौराणिक विषयों पर कलम चलाई है। इस तरह पत्रिका का यह अंक लोक साहित्य, पौराणिक संदर्भों और जल से जुड़े अन्य आख्यानों पर आधारित संग्रहणीय संदर्भ है।

- शिवकुमार विवेक, वरिष्ठ पत्रकार, साहित्यकार हैं।

प्रखर विद्वान डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू' के अतिथि संपादकत्व तथा श्री भँवरलाल श्रीवास के संपादकत्व में मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल से प्रकाशित द्वैमासिक पत्रिका 'कला समय' का जल संस्कृति विशेषांक (अप्रैल-मई 2024) अति रोचक और संग्रहणीय तथ्यों के साथ एक ऐसा अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है जिसे वर्तमान में जल संकट और इसके निवारण के लिए न केवल बरसों याद किया जायेगा बल्कि देश में जब भी जल संकट के निवारण के लिए चर्चा होगी तब इस अंक के लेखकों और उनके लेखों को उद्धरित करने हेतु इस पत्रिका की जरूरत पड़ेगी। इसके लिए पत्रिका के अतिथि संपादक और संपादक दोनों महानुभावों की दूरदृष्टि और वैश्विक समस्या पर चिंतन करने की सोच के लिए मैं सबसे पहले हार्दिक बधाई देता हूँ और आगे भी इस तरह के चिंतन का क्रम जारी रहे, इसके लिए शुभकामनाएं देता हूँ। 'जल केवल जीवन नहीं बल्कि परंपराओं का पोषक जीवन है, इस नई सोच के तहत डॉ. 'जुगनू' जी का अतिथि संपादकीय गहन रूप से पठनीय है। जल जीवन नही जीवन से जुड़ी परंपराओं का आधार है। श्री श्रीवास जी का यह कहना कि पानीदार धरती पर पानी ही चुनौती बन गया जबकि जीवन के लिए जल अमृत है---- वर्तमान में पूरे विश्व को एक संदेश देता है कि अगर पानीदार रहना है तो पानी की कद्र करना सीख जाओ अन्यथा यह पानी ही मानवता को बेपानी कर देगा। डॉ. 'जुगनू' जी के दो आलेख 'जल- जलस्रोत और जलार्गल जहाँ हमें जल विषयक ग्रंथ, प्राचीन भंडारों की खोजबीन और उपलब्धता के बारे में

विशद जानकारी उपलब्ध कराता है वहीं जल की बदौलत दुर्ग निवेश – चित्तौड़गढ़ का जल कौतुक, हमें प्राचीन जल स्रोत की विशिष्टताओं और तकनीकी बारीकियों से रूबरू कराता है।

दोनों आलेख अपने में संपूर्णता को समेटे हुए हैं। डॉ. सुमन चौरे की ' निमाड़ की लोक संस्कृति में जल सरंक्षण की चेतना की प्रस्तुति सारगर्भित है वहीं डॉ सतीश चतुर्वेदी शाकुंतल का आलेख 'लोक में जल' जल के संगीत, लय और राग की व्याख्या करता हुआ इसके महत्व को समझाता है। डॉ. महेश दुबे का आलेख शंकर ! तुम्हें प्रणाम हमारे प्रभावोत्पादक है। डॉ शोभा सिंह अपने आलेख नर्मदा का सांस्कृतिक संसार में नर्मदा को नदी नहीं एक पूरी की पूरी संस्कृति बताती हैं, यह पठनीय है। प्रो. शैलेंद्र कुमार शर्मा ने ' भारतीय संस्कृति में जल तत्व -- शास्त्र से लोक तक' में जल की महत्ता का विशद शास्त्रीय गवेषणा करते हुए जन सामान्य का ज्ञान वर्धन किया है। श्री ध्रुव शुक्ल जी की जल सत्याग्रह कथा --- हनुमान की जुबानी छोटी सी राम कहानी ने तो एक मोहक ललित निबंध का रूप धारण कर लिया है। सागर जिले के महानायक लाखा बंजारा की कथा हमें ओझल इतिहास की बखूबी जानकारी प्रदान करता है। सुश्री राजनंदनी सिंह तोमर की जल के देवता भीमादेव और अनुष्ठान, डॉ. टीकमणि पटवारी का बावड़ियों का गढ़ देवगढ़, डॉ. अलका यादव का नदी की धारा से ही जीवन है, जल हमारी सृष्टि का मूल आधार है सहित सभी आलेख, जल तत्व पर रचित कविता, गजल, गीत अति रुचिकर ढंग से पठनीय और संग्रहणीय हैं। मैं एक बार फिर 'कला समय' की पूरी टीम को हार्दिक शुभकामनाएं एवं बधाई देता हूँ। सादर–

डॉ कवीन्द्र नारायण श्रीवास्तव, के. 65/58, गोला दीना नाथ, कबीर रोड, वाराणसी, (उत्तर प्रदेश) पिन 221001, मोबाइल 6307037057

कला समय का जल विशेषांक

वह समय अधिक दूर नहीं, जब पानी का उपहार सबसे बड़ा माना जाएगा। मरुस्थल के वासी जानते हैं पानी का मोल, यह बहुत बार कहा गया लेकिन हर बार भुला दिया गया... सच तो ये है कि पानी से ही हमारे आचार, विचार, संस्कार, शुद्धि, दान, सम्मान आदि प्राणवान है... गंगाजल लेकर लौटे परिजनों से घर की बहू बेटियां क्या मांगती हैं? वह गंगाजली, जिसकी जल धारा गांव की गली – गली गिरे, पथ की देवी पथवारी से लेकर घरद्वारी तक शुद्धि के बाद शुचिता की स्थापना हो... ! इस बार कला समय जैसी सुंदर, विचार स्थापक पत्रिका ने कमाल ही किया। 'जल संस्कृति' विशेषांक निकाला। आग्रह पर मेरा मन रखते हुए कई मित्रों ने बहुत सुंदर सुंदर लेख लिखे : जल जैसे तरल और प्रवहमान। संपादक श्री भँवरलाल श्रीवास जी ने सारा श्रेय हमारे नाम लिख दिया ! पानी पर मैंने कितनी पत्रिकाओं के लिए लिखा और कितना लिखा, याद करने की जरूरत नहीं लेकिन श्रीवासजी की उदारता की जय हो ! मैं ऋण मान रहा हूँ। यह अंक बहुत उपयोगी है, आत्मिक मित्रों ने इस पर बहुत कुछ लिखा है। यह माह इस पर चर्चा में ही रहा है। यह पीडीएफ रूप में भी है। जिस किसी मित्र को चाहिए, बस अपना नंबर दे दीजिए, चाहे इनबॉक्स ही ! आप सभी का आभार !

डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू'
इस जल संस्कृति विशेषांक के अतिथि संपादक हैं।

'कला समय' का नया अंक 'जल संस्कृति विशेषांक' के रूप में आया है। सुख्यात मनीषी रचनाधर्मी और भारतविद् डॉ श्रीकृष्ण जुगनू जी इस अनुपम अंक के अतिथि संपादक हैं। और संपादक हैं श्री भँवरलाल श्रीवास जी। यह अंक अनुपम इसलिए है कि इसमें जल को लेकर जितने सांस्कृतिक पहलू हो सकते हैं वे सब विदुषी और विद्वान रचनाकारों की कलम से निसृत हुए हैं। विधागत वैविध्य के साथ जल तत्व पर विश्लेषणात्मक कलेवर को देश के भिन्न-भिन्न हिस्सों में रह रहे रचनाकारों से जुटाया गया है। निश्चित ही इस श्रेष्ठ अंक के लिए डॉ श्रीकृष्ण 'जुगनू' जी और श्री भँवरलाल श्रीवास जी को हार्दिक बधाई बनती है। व्यक्तिश: मैं पानी पर लिखी गई कविताओं को सम्मिलित करने के लिए आप द्वय का आभारी रहूंगा।

चेतन औदिच्य
वरिष्ठ चित्रकार, कवि, उदयपुर

आज के इस संपूर्ण भौतिकतावादी समय में कला के लिए समय निकालना, जैसे रेगिस्तान में पानी के झरने की कल्पना करना है। यह है मासिक पत्रिका 'कला समय' नि:संदेह अपने समय की एक प्रतिष्ठित पत्रिका है, परंतु इसकी महत्ता और बढ़ जाती है, जब यह आज के समय के अत्यंत गंभीर विषय जल संस्कृति को अपने अंक में समाहित करती है। इस पत्रिका के संपादक श्री भँवरलाल श्रीवास की दूर दृष्टि है जो इस अंक में देश के विख्यात आचार्य प्रवर डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, मनीषी डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू', डॉ. महेंद्र भानावत, डॉ. शोभा सिंह जैसे अन्य सभी साहित्यकारों, कवियों को सम्मिलित कर इस जल संस्कृति की महत्ता को प्रतिपादित किया। नि:संदेह अंक बहुत ही विचारणीय चिंतनीय और ज्ञानवर्धक है। संपादक महोदय श्री भँवरलाल श्रीवास को बहुत-बहुत साधुवाद बधाई एवं मंगल कामनाएं।

डॉ. धर्मेन्द्र वर्मा, उज्जैन (म.प्र.)

कला समय का जल अंक केवल संस्कृति और जल की बात कहां करता है? यह अंक तो पानी की हिलती डोलती सतह पर लिखी एक शाश्वत रागिनी है, एक छलकती नदी है जो मंदिरों के अभिषेक से शुरू हो कर वेदांग को गुह्य वीथीयों का भ्रमण करती सागर की गहराईयों तक चली जाती है। और वैसे भी जब स्वयं श्री कृष्ण सारथी बन कर मौजूद हों तो शब्द पावन गीता बन अपनी लहरियों से सदियों को प्रभावित कर देते हैं। लेख दर लेख शब्द दर शब्द एक नई दुनिया का सृजन करते हैं। और बीच बीच में काव्य की खूबसूरत रश्मियां कभी सुबह का अहसास कराती हैं तो कभी संध्या की आरती बन मन में उतर जाती हैं।

हर लेख अपनी परिधियों में नया जलीय संसार लिए है और साथ साथ काव्य अभिव्यक्तियां सागर की मूंगा चट्टानों की भांति इस जल अंक की खूबसूरती को और बढ़ा देती हैं। मणि मोहन जी की बारिश के रंग और लक्ष्मी नारायण पयोधि जी की नदी की देह भीजी मन को धीरे से भिगोती जाती हैं।

निमाड़ की जल संस्कृति लेख केवल निमाड़ ही क्यों हमारे देश के अन्य प्रदेशों के जलीय संस्कारों और अनुष्ठानों का स्पर्श करता है। वरिष्ठ लेखिका डॉ. सुमन चौरे ने बड़ी खूबसूरती से संस्कृति की भाव भूमि का स्पर्श किया है। सच ही है जल, कुआं, बावड़ी, नदी आदि सभी जल स्रोत हमारी जड़ों

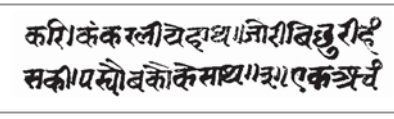

से इस प्रकार जुड़े हैं कि उनकी पूजा अर्चना के बिना हमारा कोई भी मांगलिक कार्य संपन्न नहीं होता।

गंगा के समान पूज्य नरबदा मैया का अपना अलग पावन स्थान है। डॉ शोभा सिंह ने मां रेवा का अल्हड़ बिटिया, ममतामयी मां और प्रलयंकारी विराट शक्ति के रूप में बहुत मोह भीगा चित्रण किया है। मां नर्मदा है ही ऐसी।

बनारस की जल सम्पदा का ज़िक्र किए बिना जलीय विवेचन कभी पूरा नहीं हो सकता। मां गंगा हमारे जन्म से मृत्यु पर्यन्त साथ रहती है। और बनारस तो गंगा के आस पास ही रचा बसा है। गंगा अपनी जीवनदायिनी शक्ति से हमारे जन मानस के कण- कण को आप्लावित करती है। डॉ श्रीवास्तव जी का लेख बनारस में शंकर और गंगा के साथ संगीत की जुगलबंदी भी प्रस्तुत करता है।

आदरणीय श्री कृष्ण 'जुगनू' जी सुश्रुत से लेकर भावभट्ट तक, ताल से लेकर बावड़ी तक अपनी प्राचीन जलीय संस्कृति और हमारे पूर्वजों के जल के प्रति समर्पण को पूरी शिद्दत से प्रस्तुत करते हैं। उनके लेखों में बीते समय के अभिलेखों और इतिहास के वैभव का संपूर्ण भव्यता से चित्रण अतीत और जल के प्रति हमारे चिंतन को नई जीवंत भावभूमि प्रदान करता है।

डॉ. प्रिया सूफी, होशियारपुर

राजधानी भोपाल से प्रकाशित 'कला समय' पत्रिका परंपरा, कला, संस्कृति एवं साहित्य की एक प्रभावी द्वैमासिक पत्रिका है। अप्रैल-मई अंक जल संस्कृति विशेषांक के रूप में संजोया गया है। इस अंक के अतिथि संपादक ऋषिप्रज्ञ मनीषी श्रीकृष्ण जुगनू जी हैं जिनकी सारस्वत लेखनी ने भूमिका में जल की महत्ता का प्रतिपादन सौम्य ललित वाक में रचा है। जल विशेषांक में आलेख सम्मिलित करने हेतु संपादक द्वय को हार्दिक आभार प्रेषित करती हूँ। यह अंक जल तत्वनिधि संबंधित महत्वपूर्ण वैचारिकी से संपन्न एवं रुचिकर है। विद्वतजनों द्वारा लिखे विविध आलेख, कविताएँ पर्यावरण चिंतन के मर्म को उद्घाटित करती हैं। आर्ष ग्रंथों, पुराणों, लोक मान्यताओं से परिचित न होने पर भी पाठक ऋषिप्रज्ञा के इस अनुपम प्रसाद से लाभान्वित हो सकते हैं। लोक और शास्त्र की परंपरा से संपन्न मेधावी सुहृदों द्वारा सरस्वती के निर्मल प्रवाह जैसा विशिष्ट अंक निर्मित हुआ है। जल संस्कृति के संरक्षण की दिशा में आदरणीय श्रीवास सर की यह संकल्प चेतना एवं उद्यम अभिनंदनीय है 'कला समय' समूह को साधुवाद

डॉ. शोभासिंह, गुना (म.प्र.)

'कला समय' पत्रिका का जल संस्कृति पर केंद्रित अंक पढ़ा तो लगा मानो जल को पहले कभी इतना जाना ही न था। गुरुवर डॉ. Shri Krishan Jugnu जी ने इस पत्रिका के अतिथि संपादक के रूप में इस अंक को संग्रहणीय बना दिया है। जल के ऊपर प्रस्तावना का लेख ही गागर में सागर के समान है।

जल जीवन की अत्यंत मूलभूत आवश्यकताओं में शामिल है, परंतु जल उससे भी बढ़कर संस्कृति का वाहक भी है। कितनी सुंदर बात है कि भारतीय दृष्टिकोण में वर्षा की देन जल की बूँद परम वरदान मानी गई है और इसी वर्षण क्रम से भारत को वर्ष कहने का सुंदर भाव रहा।

पत्रिका के अन्य लेख इतने सुंदर, इतने ज्ञानवर्द्धक बन पड़े हैं कि लगता है कितना कुछ जानना शेष है।

आदरणीय डॉ. सुमन चौरे जी द्वारा किए जा रहे निमाड़ साहित्य और निमाड़ी के उत्थान के प्रयासों का मैं प्रशंसक हूँ और इस पत्रिका में उनके लेख ने एक लोक में जल के पूजन की एक नई दृष्टि दी है।

इस विशेष व संग्रहणीय अंक के लिए 'कला समय' की पूरी संपादकीय टीम व समस्त लेखकगण को हार्दिक शुभकामनाएँ व साधुवाद।

रोहित चेडवाल

'कला समय' भोपाल से प्रकाशित कला, संस्कृति एवं साहित्य की एक सशक्त द्वैमासिक पत्रिका इसके इस बार वाले अंक जल संस्कृति विशेषांक में आवरण और अंतिम आवरण पर दो तस्वीरें प्रकाशित हुई है और दोनों मारवाड़ की है, जहां जल सबसे ज्यादा मूल्यवान संसाधन है, प्रथम बाड़मेर से आते समय ली हुई है जहां गांव से दूर एक नाड़ी से ग्रामीण स्त्रियां पानी लेकर आ रही है, दूसरी शेखावाटी क्षेत्र के मंडावा की है जहां के ये कुए पुराने समय में अपनी मीनारों के कारण प्यासों को दूर से नज़र आ जाते थे, इस अंक के अतिथि संपादक श्री कृष्ण जी 'जुगनू' भाई साहब हैं, आपका और 'कला समय' परिवार का हार्दिक आभार प्रकट करता हूं, आप भी इस पत्रिका का पाठन कीजिए और जानिए किस तरह जल हमारे मरू प्रदेश में कई कथाओं, गीतों और पात्रों का जनक है, व इसका कैसे और कितना महत्व है।

पंकज शर्मा सूफी, इस जल विशेषांक के आवरण कलाकार हैं।

'कला समय' एक पत्रिका है जो भोपाल से प्रकाशित होती है। यह मात्र एक पत्रिका नहीं। वस्तुत: रचनात्मक अनुष्ठान के ध्येय वाक्य के साथ यह समाज के प्रत्येक कोने तक पहुँचती है। संस्कृति, कला और सरोकार के त्रिआयाम धारण कर एक पत्रिका साहित्य के अर्थ को सार्थक बनाती है। कला समय का अप्रैल-मई 2024 का अंक इस धारणा को पुष्ट करता है।

इस अंक के अतिथि संपादक डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' जी हैं, जिनका लेखन शास्त्रसम्मत होने के साथ शोध के वैज्ञानिक और लोक के व्यावहारिक पहलुओं पर आधारित होता है। वे शब्दों को साधना की तरह बरतते हैं और इस अंक का संपादकीय एक उत्कृष्ट साहित्यमनीषी की प्रज्ञा और अंत: दृष्टि से हमारा साक्षात्कार कराता है।

जल के बिना न कल है, न जीवन। जल सुंदरता और उजास का हेतु है। जल पर केंद्रित इस अंक का हर आलेख उत्कृष्ट है। निश्चित ही, यह अंक जल के प्रति हमारे भावों को नवीन चेतना के पथ पर अग्रसर करेगा।

आदरणीय श्रीकृष्ण जी 'जुगनू' को साधुवाद, कि हम पंचतत्वों के एक महत्वपूर्ण भाग 'जल' के बारे में इतनी विशद और मार्गदर्शक जानकारी प्राप्त कर सके ।

दशरथ कुमार सोलंकी

■

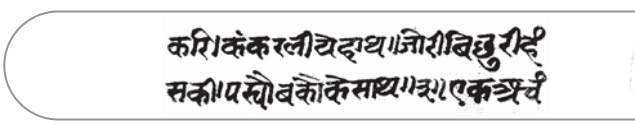

संत कबीर वाणी की हस्तलिखित 466 साखियों का एक संग्रह जो भुज नगर में तैयार हुआ। यह वर्तमान में बड़ौदा के वस्तु संग्राहक हर्षदभाई कड़िया के संग्रह में है। 'कला समय' के इस 'संत कबीरदास' विशेषांक को हेतु पांडुलिपि उपलब्ध कराने हेतु 'कला समय' परिवार आपका आभारी है।

Our land. Our future.
We are #GenerationRestoration.

For five decades, HPCL has been a force for progress, reaching for the sky just like a mighty tree. But even the tallest trees need healthy roots. This World Environment Day, as we celebrate our golden jubilee, we're recognizing the importance of a strong foundation - our planet.

The UN's #GenerationRestoration call resonates deeply with us. That's why we're embracing the spirit of Panchatattvon ka Maharatva and taking action for a greener future. We're committed to nurturing the land that sustains us, planting the seeds for a future where nature thrives alongside progress.

हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड
Hindustan Petroleum Corporation Limited

सबसे पहले
लाइफ इंश्योरेंस

ऑनलाइन भी उपलब्ध

ज़िन्दगी है बड़ी
ऐसे ही लाभ भी हो बड़ा

एक बार निवेश, एक सुरक्षित भविष्य के लिए

एलआईसी की नई
जीवन शांति

UIN-512N338V02 ● Plan No. 858

एक नॉन–लिंक्ड, असहभागी,
व्यक्तिगत, एकल प्रीमियम,
आस्थगित वार्षिकी योजना

निश्चित वार्षिकी दरें
पॉलिसी के प्रारंभ से

अनेक वार्षिकी विकल्प

बढ़ता हुआ मृत्यु लाभ
आस्थगन अवधि के दौरान

डाउनलोड करें एलआईसी मोबाइल ऐप "MyLIC"
विज़िट करें: licindia.in

कॉल सेन्टर सर्विस (022) 6827 6827

अधिक जानकारी के लिए, अपने अभिकर्ता/निकटतम एलआईसी शाखा से संपर्क करें या एसएमएस करें शहर का नाम 56767474 पर

हमें यहाँ फॉलो करें: LIC India Forever | IRDAI Regn No.: 512 | हर पल आपके साथ

LIC
भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA
मध्यक्षेत्र, भोपाल

LIC/PRA/2021-22/49/Hin

नकली फोन कॉल्स और झूठे/धोखाधडी पूर्ण ऑफ़र्स से सावधान रहें. आईआरडीएआई जीवन बीमा पॉलिसियों की बिक्री, बोनस घोषित करने या प्रीमियमों के निवेश जैसी गतिविधियों में संलग्न नहीं है. ऐसे फोन कॉल प्राप्त करने वाले व्यक्तियों से अनुरोध है कि वे पुलिस में इसकी शिकायत दर्ज करवाएँ. **बिक्री समापन से पूर्व अधिक जानकारी या जोखिम घटकों, नियम और शर्तों के लिए बिक्री पुस्तिका को ध्यानपूर्वक पढ़े.**

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास